प्रकाशक—

विप्लव कार्यालय,

लखनऊ.

मुद्रक—

प्रकाशवती पाल,

थी प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ.

समर्पण—

समाज में स्तुति हो या निन्दा ·······················

भले ही धनपतियों का श्राप मिले ··············

सामने आकर मृत्यु ही क्यों न खड़ी हो ···············

न्याय पथ पर अविचल रहेंगे धीर ···············

इसी आशा में देशवासियों को समर्पित—

यशपाल

अनुक्रमणिका

गांधीवाद की शवपरीक्षा की जरूरत ?

सन् १९२० से १९४० तक भारतवर्ष का राजनैतिक इतिहास गांधीवाद का युग कहा जा सकता है। १९२० के राजनैतिक असंतोष की अवस्था में महात्मा गांधी ने देश के सामने जनता के असंतोष को प्रकट करने का एक क्रियात्मक उपाय सत्याग्रह और असहयोग के रूप में पेश किया। सन् १९२० का सत्याग्रह और असहयोग १९४० के सत्याग्रह की तरह आध्यात्मिक न था। वह सर्वसाधारण जनता की समझ में आ सकने योग्य था। उस समय के राजनैतिक वातावरण में सत्याग्रह और असहयोग का अर्थ जनता ने समझा—अपने अधिकार की प्राप्ति के लिये संघर्ष और उसे बन्धन में रखनेवाली शक्ति की सहायता न करना। राजनैतिक दृष्टि से सत्याग्रह और असहयोग का दूसरा अर्थ हो भी नहीं सकता। सार्वजनिक आन्दोलन के रूप में उस आन्दोलन को खूब सफलता मिली। शासक शक्ति के विरोध में पराधीनों का आन्दोलग सत्याग्रह और असहयोग के सिवा और कुछ हो भी नहीं सकता। देश और समय की परिस्तियों के अनुसार सत्या-ग्रह और असहयोग सशस्त्र या निशस्त्र दोनो ही प्रकार का हो सकता है। भारत के लिये सशस्त्र सत्याग्रह और असहयोग का अवसर न था। सत्याग्रह और असहयोग को, निशस्त्र रूप से, जनता की सामूहिक शक्ति के सहारे चला सकने की सूझ भारत की राजनीति को महात्मा गांधी की बड़ी भारी देन है।

सत्याग्रह और असहयोग को निशस्त्र और अहिंसात्मक बना देने से यह आन्दोलन आम जनता के लिये सुगम हो गया। आम जनता की चीज़ बन सकने का कारण सन् १९२० के राजनैतिक आन्दोलन

का जो विस्तार हुआ वह भारतवर्ष की मौजूदा पीढ़ी के जीवन में एक नयी और बहुत बड़ी बात थी। भयभीत और उत्साहहीन जनता के लिये सामूहिक रूप से आवाज़ उठा सकने का साहस कहना साधारण घटना न थी। यद्यपि आन्दोलन का उद्देश्य (स्वराज्य) हासिल न हो सका फिर भी आन्दोलन के प्रदर्शन ने जनता में उत्साह और साहस भर दिया। जयता की इतनी बड़ी राजनैतिक सेवा कर सकने के कारण महात्मा गांधी जनता के लिये पूज्य हो मये। भारत की राजनीति गांधीवादी आध्यात्मिकता के आधीन हो गई। गांधीवाद का महत्व और शक्ति बहुत बढ़ गई। गांधीवाद देश के राजनैतिक आन्दोलन को आगे ले जाने का साधन न रहा, बल्कि राजनैतिक आन्दोलन गांधीवाद के आदर्श को पूरा करने का साधन बनने लगा। गाधीवाद के आदर्श कांग्रेस के राजनैतिक कार्यक्रम का रूप लेने लगे।

गांधीवाद केवल राजनीति ही नहीं। वह जीवन का एक दृष्टिकोण है। गांधीवादी दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं। वह इतिहास और तर्क के आधार पर नहीं चलता। उसका आधार है, विश्वास और संस्कर। बिश्वास को दृढ़ बनाने के लिये गांधीवाद मनुष्य की बुद्धि और विवेक का भरोसा नहीं कर सकता; वह सहारा लेता है भगवान की प्रेरणा का। मनुष्य की परिस्थितियाँ और उसके अनुभव बदलते रहते हैं। परिस्थितियो और अनुभव के आधार पर खड़ा होने वाला विश्वास समय के अनुसार बदल जायगा। विश्वास का यह बदलना या उसको अस्थिरता प्रवाह में बहती हुई नाव की अस्थिरता के समान है। मनुष्य के विश्वास की नाव उसकी परिस्थितियो के प्रवाह पर बहती जाती है। यह क्रम विकास का मार्ग है। यदि नाव को प्रवाह में स्वाभाविक गति से बहने न देकर डांड लगाकर खड़ा कर देने का यत्न किया जायगा तो नाव की अवस्था विषम हो जायगी, भँवर पैदा हो जायगे और वह डूब भी जा सकती है। मनुष्य के विश्वास और धारणा भी यदि परिस्थितियों के

प्रवाह के अनुकूल बदलते न रहेंगे तो परिस्थितियों से अड़चन अनुभव करेंगे। जब मनुष्य समाज की व्यवस्था परिस्थितियों के विरुद्ध विश्वास के आधार पर होगीं तो परिस्थितियों और विश्वास में विरोध के कारण अव्यवस्था और अशान्ति पैदा हो जायगी।

समाज को व्यवस्था-पूर्वक चलाने के लिये नैतिकता के नियम बनाये जाते हैं। परिस्थितियो के बदलने पर व्यवस्था का बदलना ज़रूरी होता है और उसके साथ ही नैतिकता की दाग़वेल भी नये सिरे से देनी पड़ती है। यह विकास का क्रम है और मनुष्य-समाज का लाखों वर्ष पुराना इतिहास विकास के इस क्रम का ही प्रमाण है। मनुष्य-समाज के अतीत अनुभव के आधार पर ही भविष्य के लिये विकास का क्रम निश्चित किया जा सकता है।

जीवन का एक संकुचित रूप है और दूसरा विस्तृत। अपने संकुचित रूप में जीवन समाज और परिस्थितियों की स्थिरता चाहता है। स्थिरता के बिना जीवन के पैर नहीं जम सकते। उसमें पूर्णता तथा विकास की नई मंज़िल की ओर बढ़ सकने की शक्ति नहीं आ सकती। जीवन का विस्तृत रूप अस्थिरता और परिवर्तन (बिकास) का है! परन्तु वास्तव में जीवन गति और अस्थिरता है। जीवन की विस्तृत अस्थिरता और परिवर्तन के क्रम में जीवन की स्थिरता सीढ़ियों या मंज़िलों के समान है। स्थिरता और परिवर्तन में विरोध नहीं। स्थिरता के बिना परिवर्तन और विकास के लिये परिस्थिति और शक्ति पैदा नहीं हो सकती। इसी प्रकार परिवर्तन के बिना स्थिरता और पूर्णता के लिये अवसर और परिस्थिति नहीं आ सकती। स्थिरता और परिवर्तन एक दूसरे के लिये आवश्यक है। जीवन की रक्षा के लिये स्थिरता और जीवन के विकास के लिये परिवर्तन अवसर देता है। मनुष्य की संकुचित दृष्टि में स्थिरता ही सब कुछ जान पडती है, परिवर्तन को वह भूल जाता है।

संकुचित दृष्टि के कारण मनुष्य को स्थिरता से इतना मोह हो जाता है कि वह परिवर्तन से डरने लगता है। परिवर्तन के लिये परिस्थितियाँ मनुष्य स्वयम् ही तैयार करता है परन्तु परिवर्तन का अवसर आ जाने पर उससे भयभीत होने लगता है। परिवर्तन का अवसर आ गया है, इस बात की सूचना समाज के सम्बन्धों में पैदा हो जाने वाले संकट और अव्यवस्था देते हैं। मनुष्य की संकुचित बुद्धि और आत्मरक्षा की संकुचित वृत्ति* समाज में संकट और अव्यस्था को अनुभव करती है परन्तु परिवर्तन के लिये क़दम उठाने से भय लगता है। इस भय से बचने के लिये वह परिवर्तन की आवश्यकता पैदा करनेवाले कारणों को दूर कर देना चाहती है। जो परिस्थितियाँ परिवर्तन की आवश्यकता पैदा करती हैं, उन को दूरकर वह पहले की उस अवस्था में लौट चलने की बात सोचने लगता है जब परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव न हो रही थी। उस अवस्था में लौट चलने के लिये वह संतोष और त्याग की बात सोचने लगता है। मनुष्य समाज के विकास में प्रत्येक परिवर्तन के समय ऐसा ही हुआ। समाज की आत्मरक्षा की विस्तृत और विराट प्रवृत्ति उसे विकास की ओर बढ़ाती हैं परन्तु आत्मरक्षा की संकुचित वृत्ति उसे पीछे की ओर ले जाना चाहती है। इन दोनों वृत्तियों में जो संघर्ष होता है, वही क्रान्ति का रूप ले लेता है।

क्रान्ति या परिवर्तन से समाज में हलचल ज़रूर होती है परन्तु वह जीवन का शत्रु या हिंसा नहीं, वह जीवत का रक्षक और पोषक है। माता के गर्भाशय की परिस्थितियों में शिशु के पूर्ण हो चुकने के बाद, के जीवन की रक्षा के लिये, उसका नया परिस्थितियों में आना आवश्यक होता है। व्यवस्था के इस परिवर्तन में कुछ उथल-पुथल या

---

*आत्मरक्षा की संकुचित वृत्ति Animal instinct of self-preservation कहा जा सकता है।

पीड़ा अनुभव होती ही है परन्तु उससे बचने के लिये शिशु को माता के गर्भ में ही नहीं रहने दिया जा सकता। उससे माता और शिशु दोनों ही समाप्त हो जायँगे। यही बात पुरानी व्यवस्था के गर्भ से नयी व्यवस्था के जन्म के बारे में भी है।

इस बात में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और गांधीवाद का भेद है। गाधीवाद यह स्वीकार करता है कि समाज की वर्तमान अवस्था में शोषण है और अव्यवस्था है। इन सब संकटों और अव्यवस्थाओं का उपाय भी वह करना चाहता है। परन्तु वह यह स्वीकार नहीं करता कि समाज में यह सब संकट और अव्यवस्था स्वाभाविक विकास से ही पैदा होगये है और इनका उपाय भी विकास के इस क्रम को जारी रखना ही है। आज दिन संकट इसलिये अनुभव होरहे हैं कि समाज की परिस्थितियों ने विकास के जिस परिवर्तन के लिये अवसर बनाया है, उसे रोका जा रहा है। आगे बढ़ने का मार्ग बन्द है। विपरीत इसके गांधीवाद संकट और अव्यवस्था पैदा कर देनेवाली परिस्थितियों को दोष देता है। वह कहता है हमें इन परिस्थितियों से पहले की अवस्था में लौट जाना चाहिये। मनुष्य ने अपने अनवरत परिश्रम और बलिदान से मनुष्य-जाति को सबल और समर्थ बनाने के लिये जिन साधनों को पैदा किया है, उन्हें गांधीवाद संकट और अव्यवस्था का कारण बताता है। वह कहता है मैशीन को मिटा दो क्योंकि मैशीन मनुष्य का सामर्थ्य बढ़ाकर उसे अन्याय और अत्याचार की शक्ति देती है। वह यह नहीं सोचता कि मैशीन द्वारा मनुष्य की बढ़ी हुई शक्ति उसे समाज की भलाई करने का भी उतना ही अवसर देती है। वह यह नहीं सोचता कि मैशीन की दानवी शक्ति उलटे मार्ग पर चलकर समाज को संकट और अव्यवस्था में डाल सकती है तो सीधे मार्ग पर चलकर वह उसके जीवन को सुखमय तथा समर्थ भी बना सकती है। उसे शिकायत है कि मैशीन की सभ्यता मनुष्य को स्वार्थी और

निर्दय बना देती है। परन्तु निर्जीव मैशीन तो स्वयम् कुछ बना या बिगाड नहीं सकती। मनुष्य बनता है अपनी व्यवस्था से ही। मैशीन की महाशक्ति को छोडकर मनुष्य-समाज पगु बन जाय, क्या इससे यह कहीं अधिक अच्छा नहीं कि समाज के कल्याण की दृष्टि से मैशीन की शक्ति का उपयोग करने के लिये, समाज की व्यवस्था बदल दी जाय; उसे नयी परिस्थितियाँ दी जायँ जिनके द्वार पर वह आ खडा हुआ है? समाज नयी व्यवस्था के प्रसव की पीडा से व्याकुल हो रहा है। गांधीवाद पुरानी व्यवस्था के पेट पर पट्टी बाँधकर इस प्रसव पीडा या हिंसा का उपाय करना चाहता है। समाज विकास के मार्ग पर मैशीन के घोडे पर पूँछ की ओर मुख करके बैठा हुआ है। घोडे की चाल तेज़ है, इसलिये समाज का सिर चकरा रहा है। गांधीवाद यह स्वीकार नहीं करता कि समाज का मुख घोडे के सिर की ओर कर दिया जाय। वह कहता है, यह सवारी सर्वनाश कर देगी, इसे समाप्त कर दिया जाय।

गाधीवाद का मार्ग त्याग का है। वह शक्तिहीनता से शान्ति, असामर्थ्य से सतोष और अभाव से समता लाना चाहता है। ससार से विमुख हो कर वह ससार में जीवन बिताना चाहता है। गाधीवाद के इस कोकून * में बन्द होकर भारत की राजनीति विकास करना चाहती है। परिवर्तन को पंगु बना देने वाली गांधीवादी नीति, समाज को संकट और अव्यवस्था से मुक्ति नहीं दिला सकती। पीडा और भूख से तडपते समाज के जनता रूपी शरीर का हित गांधीवादी नीति से पूरा नहीं हो सकता। यह नीति समाज के शरीर को रोगी बनाये हुये उन कीटाणुओं की ही रक्षा कर रही है जो समाज के रोग से पुष्ट हो रहे हैं। पुरानी परिस्थितियो की नैतिकता के शव को ले वह नवीन व्यवस्था के मार्ग में अर्गला मात्र बन रही है। गाधीवाद की इस विकास विरोधी नैतिकता से मुक्ति पाये बिना समाज स्वतत्रता की ओर

* रेशम के कीड़े का-खोल 'कोकटी'।

नहीं जा सकता। भारतवर्ष के राजनैतिक विकास में गति रुक जाने से हम परेशान हैं परन्तु इसकी ज़िम्मेवारी हमीं पर है, क्योंकि हमने गति और विकास की विरोधी नीति के हाथ अपना नेतृत्व सौंप रखा है। यह सब बातें अस्पष्ट पहेली सी जान पड़ेंगी। इस पहेली को सुलझाने के लिये ही आगे के सब पृष्ठ लिखे गये हैं।

शव-परीक्षा शब्द से यदि किसी को विरोध या वैमनस्य की गंध आये तो इतना ही कहूँगा कि रागद्वेष का तो कोई कारण कल्पना मे भी नहीं। केवल कर्तव्य समझकर यह काम करना पड रहा हे जो कुछ लोगो की नज़र में केवल दुस्साहस मात्र होगा। शव की परीक्षा मनुष्य समाज के प्रति विरोध और घृणा की भावना से नहीं, उसके हित के लिये ही की जाती है। भारत के राजनैतिक स्वास्थ्य के लिये गांधी-वाद—भारत की आधुनिक राजनीति—की शव परीक्षा जरूरी है।

× × ×

इस काम को करने का निश्चय तो कई दिन से था परन्तु 'विप्लवी ट्रैक्ट' के काम से फ़ुर्सत न मिल रही थी। ८ जून १९४१ को भारत रक्षा कानून, दफ़ा ३८ मे गिरफ्तार हो जाने पर इस काम को पूरा न कर सकने का खेद मन मे लेकर जेल गया। उन मित्रो को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने जमानत पर छुडा लिया और यह काम जेल जाने से पहले पूरा हो सका *। इस कठिन समय में पुस्तक के प्रकाशन मे जिन साथियो से सहायता मिली है, वे स्वयम जानते हैं, मै उनका कितना आभारी हूँ।

रात के डेढ़ बजे
१३ अगस्त १९४१

यशपाल

---

* शायद जाना ही पड़े।

दूसरा संस्करण

'गांधीवाद की शव परीक्षा' के लिये अन्य पुस्तकों की भांति प्राय. प्रशंसा ही नही मिली। राजनैतिक समाज के कई भागों में क्रोध का पात्र भी बनना पडा। जब कभी अवसर मिला इस पुस्तक में प्रकट किये विचारो और राजनैतिक घटनाओं के विश्लेषण सम्बंध में अपने विचारो से सहमत न होने वाले सज्जनों से परामर्श भी किया। मैं इस बात के लिये तैयार रहा हूँ और अबभी तैयार हूँ कि जहाँ घटनायें और उनके कारण समझने मे या गांधीवादी राजनीति के दृष्टिकोण को समझने में मुझसे भूल हुई है, उसे समझ कर सुधार लूँ। मैं इस वात के लिये भी तैयार रहा हूँ कि यदि मुझे अपने विश्लेषण में भूल सुझादी जाय तो इस पुस्तक को बाज़ार से वापिस ले लूँ। जब कभी इस विषय मे परामर्श का अवसर आया तो एतराज़ करने वालों ने पुस्तक के नाम से भड़क कर इसे पढ़ने से इनकार कर दिया था। कुछ ऐसे सज्जन थे जिन्हें एतराज़ केवल नाम की कटुता से था। कटुता अनुभव करने का कोई कारण मुझे नहीं जान पड़ता। महात्मा गांधी के व्यक्तिगत जीवन के प्रति पुस्तक में एक भी शब्द नहीं। किसी कड़वे अथवा अपमानजनक शब्द का भी उपयोग कहीं नहीं किया गया। विचार-स्वतंत्रता के अधिकार से किसी भी विचारधारा का विश्लेषण कर उसे आंका जा सकता है। घटनाओ के सम्बन्ध में प्रत्येक घटना का हवाला दे दिया गया है। ऐसे सज्जन केवल दो ही मिले जो सिद्धांन्त रूप से पुस्तक में प्रकट विचारों को ठीक नही समझते परन्तु इस विषय में उनके विचार और तर्क जानने का अवसर मुझे न मिल सका।

कुछ सज्जनो को पुस्तक के नाम के विषय में इसलिये एतराज़ है कि ऐतिहासिक रूप से गांधीवाद को वे लोग मर गया नहीं समझते।

'गांधीवाद' के सजीव होने का निर्णय इन सिद्धान्तों को तर्क और घटना क्रम की कसौटी पर जाँच कर और जनता पर इन सिद्धान्तों का प्रभाव आंक कर किया जा सकता है। सिद्धान्तों को तर्क और घटना क्रम की कसौटी पर जाँचने का यत्न ही इस पुस्तक का उद्देश्य है। जहाँ तक जनता पर गाधीवाद के प्रभाव का प्रश्न है, उसे हम पुस्तक के प्रथम प्रकाशन अर्थात् १९४१ के बाद की घटनाओ से और भली प्रकार देख सकते है।

यह स्पष्ट होना आवश्यक है—महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा और अनुराग एक बात है और उनके सिद्धान्तों पर विश्वास दूसरी। यदि 'महात्मा गाधी को जय' का नारा लगा विरोधी के सिर पर लाठी मार उसे बैठा दिया जाय तो यह गांधीवाद का दम भरनेवाले सज्जनो को क्षणिक विजय तो हो सकती है परन्तु गांधीवाद के सिद्धान्तों की विजय नही। महात्मा गांधी पर जनता को बहुत श्रद्धा है परन्तु गांधी-वाद के सिद्धान्त जनता की पहुँच में कभी नही आये यह बात स्वयम महात्मा गांधी बीसियो बेर कह चुके है। भारत के राजनैतिक आन्दोलन पर गांधीवाद का प्रभाव इसलिये पडा कि कांग्रेस के नेताओं ने इन सिद्धान्तो को या महात्मा गांधी के व्यक्तित्व को अपने आन्दोलन के लिये उपयोगी समझा। गत छ वर्षों में न केवल सिद्धांत रूप से बल्कि क्रियात्मक रूप से भी कांग्रेस का नेता दल गांधीवाद को छोड़ता आ रहा है। महायुद्ध के समय कांग्रेस नेतादल और महात्मा गांधी को नीति में विरोध था। १९४२ का सबसे उग्र कांग्रेस आन्दोलन जिसे कांग्रेस के नेता कभी कांग्रेस आन्दोलन कहते हैं और कभी उसे अपना आन्दोलन स्वीकार नहीं करते—गांधीवादी सिद्धान्तो पर नहीं चला। इस आन्दोलन के पश्चात् से कांग्रेस नेताओ ने अपना एक मात्र नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथो मे देना स्वीकार नहीं किया। १९३९ तक महात्मा गाधी कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि की हेसियत से ब्रिटिश

सरकार से मोल तोल करते थे। १९४२ के बाद से यह बात नहीं दिखाई देती। कारण स्पष्ट है कि कांग्रेस के नेतादल को गांधीवाद के सिद्धान्त अपनी नीति और उद्देश्य के अनुकूल नहीं जान पड़ते। यह बात दूसरी है कि आन्दोलन की असफलता के उत्तरदायित्व से बचने के लिये नेतादल अब भी महात्मा गांधी को आगे कर देता है परन्तु जब नीति का प्रश्न आता है, महात्मा गांधी को प्रकृतिचिकित्सा अथवा 'रामधुन' द्वारा स्वास्थ्य सुधार के प्रयोगो के लिये छुट्टी देदी जाती है।

गांधीवाद के सिद्धान्त भारत की राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने मे कहांतक सफल हुये हैं यह प्रश्न भी गांधीवाद के जीवन और मृत्यु के प्रश्न का उत्तर दे सकता है। गांधीवादी राजनीति का मुख्य शस्त्र या कार्यक्रम है सत्याग्रह और हृदय परिवर्तन ! इस शस्त्र द्वारा ही कांग्रेस गांधीवाद के अनुसार इस देश की स्वतंत्रता में बाधक भीतरी शक्तियो और इस देश को गुलामी मे बांधे रखनेवाली विदेशी सरकार से लडती रही है। देश की स्वतंत्रता के मार्ग में अड़चन डालनेवाली प्रवृत्तियो मे हम मुख्यत. मुसलमानो की भिन्न और स्वतंत्र राष्ट्र की भावना, अछूत समस्या और दूसरी साम्प्रदायिक भावनाओ को समझ सकते है। गांधीवाद ने इन समस्याओं का उपाय हृदय परिवर्तन समझा। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये, हिन्दू अछूत एकता के लिये महात्मा गांधी ने उपवास द्वारा प्रयत्न किये। व्यक्तिगत सत्याग्रह का यह सब से विकट रूप था। इन उपवासों से इस समस्या पर जो प्रभाव पड़ा वह छिपा नहीं। दोनोंही समस्यायें आज पहले से कहीं अधिक विकट रूप मे देश के सामने हैं और गाधीवाद उपवास द्वारा मुसलमानो और अछूतों का हृदय परिवर्तन करने की आशा भी छोड़ चुका है। विपरीत इसके आज महात्मा गांधी का नाम मुसलमानों और अछूतो के लिये युद्ध की चुनौती के रूप मे हो गया है। सत्याग्रह और असहयोग

को भारत के कम्युनिस्ट देश के मज़दूरो और किसानों की समस्यायें हल करने का साधन बना रहे है और यह बात स्वयम् गांधीवाद और कांग्रेसी सरकार के लिये एक भय बन रही है। हिन्दू साम्प्रदायिकता में विश्वास करने वाले भी महात्मा गाधी के आश्रम पर सत्याग्रह करने के लिये तुले हुये हैं। महात्मा गाधी बेशक आज भी हरिजन बस्तियों में ठहरते हैं परन्तु विरोधियों के आक्रमण से अहिंसा और प्रेम के प्रतिनिधि महात्मा गांधी की रक्षा के लिये आज सरकार को पाँच सौ पुलिस सिपाही और काग्रेस को पाँच सौ स्वयमसेवक और आई० एन० ए० के सिपाही तैनात करने पड़ते हैं। यह है, अहिंसा की नीति का तथ्य।

असहयोग और सत्याग्रह गांधीवाद का अविष्कार नहीं हैं। राजनैतिक साधन के रूप में सभी देशों और समाजों में इनका उपयोग आततायी के विरुद्ध किया गया है। इस देश में भी मुस्लिम लीग, अछूत संघ और कम्यूनिस्ट इन साधनों का प्रयोग हड़तालों तथा आन्दोलनों के रूप में करते है। गांधीवाद की देन थी इन साधनों पर आध्यात्मिकता का रंग चढ़ा देना। परन्तु १९४२ से होनेवाले राजनैतिक संघर्षों में सत्याग्रह और असहयोग पर से आध्यात्म का रंग उतर कर वे संघर्ष के साधन मात्र रह गये हैं।

भविष्य में कांग्रेस का आंदोलन गांधीवाद के सत्याग्रह की नीति पर चलने की सम्भावना कहाँ तक है? इस प्रश्न का उत्तर १९४२ का आंदोलन देता है। १९४२ का आंदोलन गांधीवाद की सत्याग्रही नीति पर नहीं चला। कांग्रेसी नेतादल ने इस आंदोलन को अपनाया परन्तु महात्मा गांधी ऐसा नहीं कर सके। १९४६ में प्रान्तीय चुनाव लड़ने के लिये कांग्रेस ने जनता में महात्मा गांधी की जय के नारे लगाये परन्तु चुनाव में उनका कार्यक्रम गांधीवादी नीति के अनुसार न था। गाधीवाद कांग्रेस के पार्लियामेण्टरी कार्यक्रम के सदा विरुद्ध रहा है।

भविष्य में कांग्रेस कोई सार्वजनिक आंदोलन चलायेगी और उस आदोलन की नीति गांधीवादी सत्याग्रह की होगी इसमें सन्देह है। काग्रेसी नेता आज महात्मा गांधी को अपना मार्ग निश्चय करने वाला स्वीकार नही करते। आज महात्मा गांधी की सम्मति से देश के लिये वही राजनीतिक कार्यक्रम सही है जिसका समर्थन श्रीराजगोपालाचार्य ने १६४२ से किया था परन्तु काग्रेसी नेता दल महात्मा गाधी के इस परामर्ष को स्वीकार करने के लिये तैयार नही। सम्भवत. इसका कारण यह है कि १६४२ में श्रीराजगोपालाचार्य उसी नीति का समर्थन कर रहे थे जिसे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पेश कर रही थी। ऐसी अवस्था में महात्मा गाधी की प्रतिष्ठा जनता में कायम रहते हुये भी गांधीवादी नीतिका अन्त स्पष्ट हो जाता है। गत छः वर्षों में गांधीवादी राजनीति किस प्रकार परस्पर विरोधी नीतियो के सुझाव और समर्थन करती रही है, इस नीति से आज़ादी के सघर्ष को किस प्रकार टाला गया, हमारी फूट दिनों दिन बढ़ती गई किस प्रकार जनता विफल कुर्बानियों में बर्बाद हुई, और वास्तविक आज़ादी आज भी स्वप्न की वस्तु है।' इस प्रश्न को मैं अपनी नयी पुस्तक 'संकटा' मे घटनाक्रम के आधार पर स्पष्ट करने का यत्न कर रहा हूँ।

१ मई १६४६
विप्लव लखनऊ.

यशपाल

गांधीवाद

"गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, न मैं अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड जाना चाहता हूँ। मेरा यह दावा भी नहीं कि मैंने किसी नये तत्त्व या सिद्धान्त का आविष्कार किया है। मैंने तो सिर्फ जो शाश्वत सत्य हैं, उनको अपने नित्य के जीवन और प्रतिदिन के प्रश्नों पर अपने ढंग से उतारने का प्रयासमात्र किया है। मुझे दुनियां को कोई नई चीज़ नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा अनादि काल से चले आये हैं ⋯" * इसी सत्य और अहिंसा को चरितार्थ करना महात्मा गांधी और उनके अनुयाइयों की सस्थाओं का आदर्श और उद्देश्य है। इस विषय में महात्मा गांधी आगे कहते हैं:—

"ऊपर जो कुछ मैंने कहा है, उसमें मेरा सारा तत्त्व ज्ञान—यदि मेरे विचारों को इतना बडा नाम दिया जा सकता है, तो—समा जाता है। आप उसे गांधीवाद न कहिये, क्योंकि उसमें 'वाद' जैसी कोई बात नहीं है।" *

महात्मा गांधी के शब्दों में ही यदि गांधीवाद को समझना हो तो सत्य और अहिंसा की साधना ही मनुष्य का उद्देश्य है। गांधीवाद का मत है, व्यक्तिगत रूप से सत्य और अहिंसा की साधना से मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर व्यक्तिगत पूर्णता प्राप्त करता है और सामूहिक

* अपने कार्य-क्रम के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के विचार, 'हरिजन बंधु' २९–३–१९३६।

रूप से इन गुणों की साधना द्वारा मनुष्य समाज में 'राम-राज्य' स्थापित हो सकेगा। गांधीवाद का सामाजिक और राजनैतिक आदर्श राम-राज्य है। संक्षेप में सत्य, अहिंसा, सेवा और राम-राज्य की साधना गांधीवाद का आदर्श है और यही उसका कार्य-क्रम और साधन भी है। जिस आदर्श, उद्देश्य और कार्य-क्रम का प्रचार महात्मा गांधी करते हैं, उसका 'गांधीवाद' के नाम से पुकारा जाना उनकी इच्छा के अनुकूल नहीं। परन्तु महात्मा गांधी के अनुयायी अपने सिद्धान्तों और कार्य-क्रम को जनता के सम्मुख रखते समय महात्मा गांधी का नाम इनके साथ जोड़ देना उपयोगी समझते हैं। दूसरे सिद्धान्तों से अपने सिद्धान्तो की तुलना करते समय, अपनी पुस्तको, समाचार-पत्रों और बातचीत में वे 'गांधीवाद' शब्द का ही प्रयोग करते हैं। इसलिये यदि हम महात्मा गांधी की नीति, सिद्धान्तों और कार्य-क्रम का जिक्र करने के लिये गांधीवाद शब्द का उपयोग करें तो यह अनुचित न होगा; न उसमें ग़लतफ़हमी के लिये ही कोई गुंजाइश होनी चाहिये।

महात्मा गांधी का जीवन, विनय, और त्याग का जीवन है। अपने नाम से सम्प्रदाय चलाने की महत्वाकांक्षा से इनकार करना ही उन्हें शोभा देता है। परन्तु हमारे विचार में महात्मा गांधी को स्वयं भी इस नाम पर कोई एतराज़ नहीं। कराची कांग्रेस के मौके पर (२५ मार्च १९३१) अपने कार्य-क्रम का विरोध करनेवालो को उत्तर देते समय उन्होंने 'बल' पूर्वक कहा था—'गांधी मर सकता है किन्तु गांधीवाद अमर रहेगा।' * अपने सिद्धान्तों को महात्मा गांधी अमर समझते है और दुखी, दरिद्र, पराधीन भारतवर्ष के कल्याण का उपाय भी उनके विचार में इन्हीं सिद्धान्तों और कार्य-क्रम से ही हो सकता है। इससे भी कहीं अधिक विश्वास महात्मा गांधी को अपने सिद्धान्तों

* 'कांग्रेस का इतिहास, पृ० ४६० ।

की शक्ति में है। अपने सिद्धान्तो द्वारा वे न केवल भारत से दुख, दारिद्रय और गुलामी दूर कर देने का विश्वास दिलाते है, बल्कि ससार भर में सुव्यवस्था, सुख और शान्ति का उपाय भी केवल अपने ही सिद्धान्तो में उन्हें दिखाई देता है। महात्मा गाँधी के विचार में, या कहिये गॉधीवाद के अनुसार संसार, ख़ास कर संसार का वह भाग जो पश्चिमी सभ्यता का उपयोग कर भौतिक समृद्धि की राह पर चल रहा है, अवनति और नाश के गढ़े में गिर रहा है। गाँधीवाद की दृष्टि मे भारतवर्ष के दुख, संकट और पराधीनता का कारण भी यही सभ्यता है। भारत को गुलाम बना रखनेवाली शक्ति को तो पश्चिमी सभ्यता ने पैदा किया ही हे, इसके इसके इलावा पश्चिम की सभ्यता सत्य, अहिंसा, सेवा और धर्म के विपर त है, इसलिये सर्वनाशकारी है। गांधीवाद का उद्देश्य है, भारत को पश्चिमी सभ्यता के पंजे से छुड़ाकर सत्य, अहिसा और धर्म के मार्ग पर ले जाना और इस देश में राम-राज्य क़ायम कर सुख तथा शांति की व्यवस्था करना।

सत्य, अहिंसा और धर्म द्वारा मनुष्य समाज मे सुख शान्ति और न्याय की स्थापना होनी चाहिये इस विषय में तो सभी वाद, सिद्धान्त और कार्य-क्रम सहमत है। सत्य अहिंसा और न्याय क्या है और किस कार्य-क्रम से उसे प्राप्त किया जा सकता है, इसी विषय में मतभेद हो जाता है। पश्चिमी सभ्यता या भौतिकवाद (Materialism) को गाधीवाद मनुष्य समाज के लिये हानिकारक समझता है। अपने विश्वास के अनुसार भौतिकवाद भी सत्य, अहिंसा और न्याय की स्थापना करने का यत्न करता है। भेद दोनों की विचारधारा में है। भौतिकवाद सांसारिक परिस्थितियों के विचार से मनुष्य समाज के सांसारिक कल्याण को उद्देश्य समझता है। गांधीवाद मनुष्य के कल्याण के लिये सांसारिक उन्नति को गौण और आध्यात्मिक उन्नति को मुख्य समझता है। गाधीवाद की दृष्टि में सत्य, अहिंसा और न्याय का आधार आध्यात्मिक-ज्ञान

और प्रेरणा है और मनुष्य जीवन का उद्देश्य सांसारिकता से मुक्ति पा कर आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करना है। इसी उद्देश्य को लक्ष्य समझ कर ही गांधीवाद समाज की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का आधार और ढांचा तैयार करना चाहता है।

सत्य और अहिंसा का उद्देश्य

मनुष्य अकेला नही रहता, न वह रह ही सकता है। मनुष्य को समाज का अंग बनकर सामूहिक रूप से रहना पड़ता है। किसी मनुष्य के व्यवहार का असर उसके साथ रहनेवालों के जीवन पर और उसके साथ रहनेवालों के व्यवहार का प्रभाव उसके अपने जीवन पर पडे बिना नहीं रह सकता। यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य इस प्रकार व्यवहार करे कि वह दूसरो के लिये कष्ट और विरोध का कारण न बनकर उनका सहायक बन सके। जिस प्रकार के आचरण द्वारा मनुष्य व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से एक दूसरे का सहायक बनकर सुख शान्ति और व्यवस्था मे रहता हुआ उन्नति कर सके, जिस प्रकार वह व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से अधिक शक्तिशाली बनकर विकास की ओर जा सके, उन तरीको को निश्चित करने के लिये ही सिद्धान्त बनाये जाते है। इन सिद्धान्तो को ही धर्म का नाम दिया जाता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य और कर्तव्य क्या है, इस विषय मे अनेक मतभेद है। इन मतभेदों के आधार पर ही मनुष्य की भिन्न-भिन्न सभ्यताओं और धर्मों मे भेद हो जाता है। अनेक मतभेद होने पर भी यह बात सभी मत के लोगों को स्वीकार होगी कि मनुष्य के जीवन की रक्षा करना आवश्यक है और उसके लिये उन्नति का मार्ग खुला रहना चाहिये। मनुष्य जीवित ही न रह सके तो यह सोचने का मौक़ा नहीं रह जाता कि उसके जीवन का आदर्श, उद्देश्य और धर्म क्या है? जीवित रह कर ही मनुष्य अपने आदर्श, उद्देश्य और धर्म के विषय में

चिन्ता कर सकता है और उसे सुधारने या उन्नत बनाने की बात सोच सकता है। यदि मनुष्य अपने जीवन के लिये आदर्श, उद्देश्य और कर्तव्य की बात सोचता है तो उसका सबसे पहला कर्तव्य जीवित रहने के लिये प्रयत्न करना है। मनुष्य ने किया भी यही है। उसके व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों का इतिहास इस बात का गवाह है कि मनुष्य जीवित रहने, भली प्रकार जीवित रहने और उत्तरोत्तर शक्ति और सामर्थ्य प्राप्तकर आराम और समृद्धि में जीवित रहने का यत्न करता आया है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये ही मनुष्य ने आदर्श, उद्देश्य, कर्तव्य और धर्म के साधनो का व्यवहार किया है। इस उद्देश्य के पूरा करने के लिये मनुष्य ने जो विचार और निश्चय किये, जिन तरीकों का उपयोग किया, उन सब की शृंखला ही मनुष्य के धर्म और सभ्यता का इतिहास है। मनुष्य जीवन को उद्देश्य और धर्म या कर्तव्य को साधन मानकर भी कभी-कभी धर्म और कर्तव्य के लिये मनुष्य का जीवन बलिदान कर देना मुनासिब होता है।

बलिदान और कर्बानी की उपयोगियता तथा बुद्धिमत्ता को समझने के लिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि मनुष्य एक व्यक्ति के रूप में अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। मनुष्य एक दूसरे के आसरे जीते है। जिस प्रकार एक मनुष्य शरीर मे करोड़ो कोष्ठ (Cells) या जीवाणु होते हैं, प्रत्येक अणु एक पृथक जीव होता है परन्तु मनुष्य शरीर से पृथक होकर उन कोष्ठो और अणुओ का जीवन नहीं रह सकता, उसी प्रकार व्यक्ति रूप में मनुष्य भी समाज से पृथक होकर अकेला जीवित नहीं रह सकता।

व्यक्ति का जीवन समाज के जीवन से ही चल सकता है। व्यक्ति का हित- अहित, भलाई-बुराई समाज के हित-अहित और भलाई-बुराई पर निर्भर है। लाखों-बरसों और पीढ़ियो के अनुभव से मनुष्य इस बात को समझ गया है कि वह समाज से पृथक जीवित नहीं रह सकता।

मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति और शक्ति समाज की उन्नति पर ही निर्भर है। अपने हित, भलाई और उन्नति के इस राज़ को समझना ही मनुष्य की बुद्धिमानी है और इसे भूल जाना या उसकी परवाह न करना ही मूर्खता है। धर्म और कर्तव्य के नाम पर व्यक्ति को बलिदान कर देने की आवश्यकता उसी समय अनुभव होती है, जब मनुष्य के व्यक्तिगत हित और समाज के हित में विरोध दिखाई देने लगता है।

प्राय.व्यक्ति सोचता है कि अपना हित और स्वार्थ पूरा करने के लिये ही उसे समाज की व्यवस्था की रक्षा करने की जरूरत है। समाज व्यक्तियों के समूह का नाम है। व्यक्ति के बिना समाज का अस्तित्व नहीं। लेकिन इस प्रश्न पर गहरा विचार करने और ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर जान पड़ता है कि समाज के बिना व्यक्ति की उत्पत्ति ही सम्भव नहीं। समाज व्यक्ति को बनाता है यह नित्य दिखाई देने वाला सत्य है। व्यक्ति ने समाज को बनाया, यह केवल कल्पना है। व्यक्ति की उन्नति और विकास समाज का उद्देश्य और कर्तव्य है और इससे ही समाज की उन्नति और विकास हो सकता है। यदि व्यक्ति का स्वार्थ समाज के हित के विरुद्ध है तो ऐसा अव्यवस्था के कारण ही होगा। ऐसी अवस्था समाज मे अन्तर विरोध की अवस्था है। व्यक्ति के लिये यदि समाज के हित का बलिदान किया जायगा, समाज को नष्ट होने दिया जायगा तो इससे व्यक्ति भी न बच पायेगा।

समाज मे अन्तर विरोध की एक दूसरी अवस्था भी है। समाज में ऐसी अवस्था भी आ जाती है जब की व्यवस्था के कारण अधिकांश व्यक्तियो का निर्वाह कठिन हो जाता है। हम आजकल देखते हैं कि बेकारी के कारण योग्यता और इच्छा होते हुए भी मनुष्य कुछ नहीं कर पाता और मोहताजी की अवस्था मे रहने पर वह दिन-प्रतिदिन अयोग्य और सामर्थ्यहीन होता जाता है। समाज की ऐसी अवस्था व्यक्तियो के एक समूह या श्रेणी के स्वार्थों के बलिदान होने मे ही

होती है। ऐसे अन्तर विरोध से समाज के व्यक्तियों और श्रेणियो में परस्पर संघर्ष और हिंसा होने लगती है। परिवर्तन इसलिये ज़रूरी होता है कि हिंसा के कारणों को दूर कर ऐसी व्यवस्था कायम की जाय जिसमें समाज के सभी लोगों के लिये जीवित रहने का स्थान हो और हिंसा के कारण न रहें।

सत्य, अहिंसा और धर्म व्यक्ति और समाज की उन्नति और रक्षा के नियम हैं। जब कोई नियम या सिद्धान्त अपने उद्देश्य को पूरा करने में असफल रहे, तो उन नियमों और सिद्धान्तों की यथार्थता पर विचार करना ज़रूरी हो जायगा। जिस नियम और व्यवस्था को सत्य अहिंसा और धर्म कहकर पुकारा जा रहा है यदि वह समाज से हिंसा और विरोध को दूर करने में समर्थ नहीं तो वह न सत्य है, न अहिंसा और न धर्म! सत्य, अहिंसा और धर्म की कसौटी यह होनी चाहिये कि वह समाज से हिंसा दूर कर शान्ति और व्यवस्था कायम कर सकें। यह शान्ति और व्यवस्था मनुष्य समाज को संतुष्ट बना सके और सब व्यक्तियों को समान रूप से सतोष और विकास का अवसर दे सके।

सत्य और अहिंसा क्या है ?

सत्य और अहिंसा क्या है ? साधारणत: सत्य और अहिंसा के लिये धर्म शब्द का व्यवहार किया जा सकता है। परन्तु फिर प्रश्न उठता है, धर्म क्या है ? धर्म (सत्य, और अहिंसा) का उद्देश्य व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की रक्षा और विकास है। जो तरीके और काम इस उद्देश्य को पूरा कर सकें वे ही सत्य, अहिंसा और धर्म हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की रक्षा और उसका विकास सदा एक ही व्यवस्था और तरीके से नहीं हुआ। कारण यह है कि मनुष्य व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से सदा एक ही प्रकार की परिस्थितियों में नहीं रहा। इस बात के लिये स्वयं मनुष्य समाज का इतिहास प्रमाण है। मनुष्य की बदलती हुई परिस्थितियो को समझ

पाने के लिये हमें बहुत दूर अतीत के इतिहास में जाने की ज़रूरत नहीं। पिछले कुछ वर्षों के अपने इतिहास में हो हम इस सत्य को देख सकते हैं। आज से पच्चीस वर्ष पूर्व हमारा जीवन जिस प्रकार का था अपनी आवश्यकताओ को हम जिस प्रकार पूरा करते थे, बिलकुल ठीक उसी प्रकार आज हमारा जीवन नहीं है। आज से सैकड़ों और हज़ारो वर्ष पूर्व के मनुष्य जीवन और हमारे आज के जीवन में और भी अधिक भेद है। परिस्थितियो के अनुसार आवश्यकता को अनुभव कर व्यक्ति और समाज की रक्षा और विकास के लिये समाज में नियम बनाये जाते रहे है और यह नियम आवश्यक रूप से बदलते भी रहे है।

सत्य, अहिंसा, सेवा और धर्म इन शब्दों का या इस भाव को प्रकट करने वाले दूसरे शब्दों का प्रयोग मनुष्य समाज सदा ही करता रहा है परन्तु परिस्थितियों के अनुसार इन शब्दों से प्रकट होने वाली व्यवस्था और तरीके भिन्न-भिन्न रहे हैं जिस समय और जिन परिस्थितियों मे जो तरीका या कार्य व्यक्ति और समाज की जीवन और रक्षा विकास के लिये उपयोगी और आवश्यक हुआ, वही सत्य, अहिंसा, सेवा या धर्म समझा गया। इतिहास की परीक्षा से हम देख पाते हैं कि सत्य, अहिंसा, सेवा और धर्म का क्रियात्मक रूप परिवर्तनशील है। दूसरी ओर गांधीवाद की दृष्टि में सत्य और धर्म शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील हैं। वे मनुष्य के अपने निश्चय से बाहर, ईश्वर की आज्ञा और विधान हैं।

गाधीवादियो की दृष्टि से जीवन का ध्येय और उद्देश्य जीवन की रक्षा और विकास नहीं। उनकी दृष्टि में—"जीवन का उद्देश्य परमेश्वर का साक्षात्कार करना है—जीवन के दूसरे सभी कार्य इस ध्येय को सिद्ध करने के लिये है।" १ गांधीवाद कहता है "सत्य का अर्थ है परमेश्वर—यह सत्य का पर (आध्यात्मिक) अथवा ऊँचा अर्थ हुआ। अगर (सांसारिक) अथवा साधारण अर्थ में सत्य के

मानी हैं सत्य विचार, सत्यवाणी और सत्य कर्म।" २ गांधीवाद सत्य और परमेश्वर को एक ही वस्तु समझता है परन्तु परमेश्वर और सत्य की परिभाषा करते समय उन दोनों में भेद प्रकट हो जाता है। परमेश्वर की परिभाषा करते समय गाधीवाद कहता है—"इस परमेश्वर का स्वरूप मन और वाणी से परे है,—उसके सम्बन्ध में हम इतना ही कह सकते हैं कि परमेश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहनेवाला विश्व का आत्मा रूप अथवा आधार रूप और उसका कारण है। वह चेतन अथवा ज्ञान-स्वरूप है। उसीका एक सनातन अस्तित्व है। शेष सब नाशवान् हैं। यदि एक छोटे शब्द का प्रयोग इसके लिये करना चाहें तो उसे हम सत्य कह सकते हैं।" ३ तर्क और बुद्धि के मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति को आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता कि जिस वस्तु को गांधीवादी मन और वाणी से परे मानते है, उसके विषय में इतनी जानकारी उन्हें किस साधन से प्राप्त हुई ? जानकारी का साधन, मन और बुद्धि के सिवा और क्या हो सकता है ? यदि हम कुछ देर के लिये यह मान भी लें कि परमेश्वर के विषय में गांधीवादियों की यह इत्तला सही है, तो इतना स्वीकार किये बिना चारा नहीं कि मनुष्य के अनुभव, ज्ञान और जीवन में इस परमेश्वर का कोई भी गुण कहीं दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी अवस्था मे इस परमेश्वर का साक्षात्कार किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

गाधीवाद की दृष्टि में परमेश्वर और सत्य एक है। परमेश्वर की परिभाषा गांधीवाद की दृष्टि से हम देख चुके। सत्य की परिभाषा को भी समझना उपयोगी होगा। "जो विचार हमारी राग-द्वेषहीन, श्रद्धा भक्ति-युक्त तथा निष्पक्ष बुद्धि को सदैव के लिये, अथवा जिन परिस्थितियों तक हमारी दृष्टि पहुँच सकती है उनमे अधिक-से-अधिक समय तक के

(१) 'गाधी विचार दोहन' पृष्ठ स० ४ (२) पृष्ठ स० ५
(३) पृष्ठ स० ४ ।

लिये उचित और न्याय प्रतीत होते हैं, वही हमारे लिये सद्विचार हैं।" १ इस परिभाषा के दो भाग हैं। अन्तिम भाग परिस्थितियों के अनुसार अनुभव से सत्य की जॉच के सिद्धान्त को स्वीकार करता है परन्तु पहला भाग परिस्थितियो की जाँच करने के साधन, तर्क और बुद्धि पर भक्तियुक्त होने की पावन्दी लगा देता है। भक्ति का अर्थ है, ईश्वर में विश्वास ! उस ईश्वर में जो मन और वाणी से परे है। जो वस्तु मन और वाणी से परे है, उसका हमारी दृष्टि और अनुभव में आ सकनेवाली परिस्थितियो से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? बुद्धि के भक्तियुक्त होने के साथ ही उसके निष्पक्ष होने की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया गया है। जो बुद्धि भक्तियुक्त है अर्थात् पहले ही, भगवान् हैं, इस बात को स्वीकार कर चुकी है और यह भी मान चुकी है कि समाज और ससार का विधान उस शक्ति के आसरे है, वह भगवान् की इच्छा द्वारा क़ायम मानली गई व्यवस्था में अन्याय और अत्याचार का मौजूद होना कैसे स्वीकार कर सकती है ? ऐसी बुद्धि यदि समाज में अन्याय और अत्याचार का मौजद होना स्वीकार करेगी भी तो उसका दोष समाज की व्यवस्था में स्वीकार न कर, मनुष्य के दुर्गुणों के ही माथे मढ़ेगी। इस प्रकार गांधीवाद जब मनुष्य, व्यक्ति और समाज के लिये जीवन की रक्षा और विकास के नियमो सत्य और धर्म को निश्चित् करने की बात सोचता है, तो पहले ईश्वर विश्वास और भक्तियुक्त बुद्धि की रस्सी व्यक्ति और समाज के गले में बाँध देता है।

गांधीवाद की दृष्टि में सत्य-धर्म का उद्देश्य जीवन की रक्षा और विकास नहीं, बलिक उस ईश्वर से साक्षात्कार है जो शरीर की पहुँच से परे है। गाधीवाद के मत से यह ईश्वर विश्व का आत्मास्वरूप मानने का अर्थ हुआ कि विश्व और समाज की व्यवस्था ईश्वर के विधान के अनुसार है। ईश्वर चेतन और ज्ञान स्वरूप है इसलिये उसके इस

(१) 'गाधी विचार दोहन' पृष्ठ स० ५।

विधान में कोई भूल-चूक नहीं हो सकती। समाज में यदि मनुष्य को अत्याचार और सकट अनुभव होता है, तो वह मनुष्य के अपने दुर्गुणों के कारण ! इस अत्याचार और संकट का उपाय यह है कि मनुष्य इसे अत्याचार और संकट न समझ, त्याग और संतोष द्वारा सत्य और अहिंसा की साधना से भगवान् से साक्षात्कार करने का यत्न करता रहे। ईश्वर की आज्ञा और प्रेरणा से तैयार किये गये विधान मे परिवर्तन द्वारा सुधार करने की चेष्टा करना भगवान के ज्ञानस्वरूप, चेतन और पूर्ण होने में सन्देह करना है। भगवान् की प्रेरणा क्या है ? इस विषय मे शका की गुंजाइश नहीं, क्योंकि भगवान् मन और वाणी से परे है। भगवान् की प्रेरणा क्या है ? यह जानने और दूसरों को समझा देने का लाइसस केवल महात्मा लोगों को है। ईश्वर मन और वाणी से परे होने के कारण सर्वसाधारण जनता ईश्वर की प्रेरणा और विधान के विषय मे कोई राय कायम नहीं कर सकती। ऐसी नीति और व्यवस्था के परिणाम में जनता का भाग्य ईश्वर की प्रेरणा और आज्ञा को समझने और पाने का दावा करनेवाले कुछेक व्यक्तियो के ही हाथ मे रहेगा। जनता कभी आत्मनिर्णय का अधिकार न पा सकेगी।

हम भगवान् से प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते परन्तु यह तो सोच सकते हैं कि भगवान् नाम की वस्तु या शक्ति जहाँ से प्रेरणा आती है, कहीं है भी या नही। हमें समझाया गया है, भगवान् के देश तक तुम्हारी पहुँच ही नहीं, तुम भगवान् के बारे में खोज या छान-बीन करोगे कैसे ? भगवान् के देश तक हमारी पहुँच न सही, परन्तु स्वयम् अपनी अवस्था और परिस्थिति की खोज और छान-बीन तो हम कर सकते हैं ! भगवान् जिस 'विश्व के आत्मारूप और आधाररूप हैं,' उस विश्व को तो हम देख और समझ सकते हैं। हम यह देखना और जाँचना आवश्यक समझेंगे कि परमेश्वर के अनन्त और अनादि होने के गुण इस विश्व मे क्या प्रभाव दिखाते है। हमे उनसे क्या सहायता

मिल सकती है ? हमारे लिये उन्होने कौन मार्ग निश्चित् किया है ?

सृष्टि की उत्पत्ति और विकास के इतिहास को खूब छान लेने के बाद भी इस सृष्टि में किसी अनादि, अनन्त और एक रस रहनेवाली शक्ति के संचालन का सुबूत हमे नहीं मिलता। इस सृष्टि के अनादि, अनन्त, ज्ञान स्वरूप और चेतन शक्ति द्वारा संचालित होने का तरीक़ा होना चाहिये था कि सृष्टि का एक उद्देश्य और कार्यक्रम निश्चित् कर इसे एक निश्चित् मार्ग पर चलाया जाता। मनुष्य भी उस चेतन और ज्ञान स्वरूप शक्ति का अंग है, इसी शक्ति को मनुष्य मे व्यापक होकर उसके कार्य-क्रम को भी निश्चित् करना चाहिये। इस नाते मनुष्य के काम भी आरम्भ से ही पूर्ण और भूल-चूक रहित होने चाहिये। परन्तु मनुष्य को हम शनै-शनैः बनता हुआ देखते हैं। मनुष्य के विकास के इतिहास को देखकर हमें स्वीकार करना पड़ता है कि वह जैसा चेतन और ज्ञानवान आज है, सदा से वैसा नही रहा। मनुष्य अपनी चेतना और ज्ञान से जो कुछ आज कर सकता है, पचास वर्ष पहिले उतना नहीं कर सकता था ; सौ वर्ष पूर्व उससे कम और एक हजार वर्ष पूर्व और भी कम। यदि मनुष्य की चेतना के शनैः-शनै. उन्नति करने की बात से इनकार नहीं किया जा सकता तो यह भी मानना पड़ेगा कि किसी समय वह बहुत ही सूक्ष्म रही होगी। मनुष्य की यह चेतना मनुष्य के विकास के साथ-साथ उन्नति करती आई है। जब मनुष्य अपनी उन्नति की आरम्भिक अवस्था मे रहा होगा, उसकी चेतना भी वैसी ही रही होगी। जैसी पशुओ की होती है। आज भी हम देखते है कि चेतना कम या अधिक सभी जीवो मे है। सभी जीव उसी अनादि, अनन्त, चेतन, ज्ञान स्वरूप, सम्पूर्ण विश्व मे समाये रहनेवाले भगवान् के अंश हैं फिर उनमें चेतना समान रूप से क्यो नहीं ? मनुष्य मे ही यह चेतना सबसे अधिक बढ़ गई, तो इसमें मनुष्य की अपनी भी कुछ करनी होगी ही।

मनुष्य को जब अपनी चेतना के बढ़ाने की स्वतंत्रता है, तो उसे अपने जीवन क्रम को, अपने ज्ञान के अनुसार सत्य को बदलने की भी न केवल स्वतंत्रता है बल्कि ज़रूरत भी है। ऐसी अवस्था में मनुष्य का सत्य परमेश्वर के कभी न बदलने वाले—गांधीवादी—सत्य से भिन्न है। मनुष्य के जीवन का सत्य उसके जीवन के विकास के साथ साथ, मनुष्य जिन परिस्थितियों में पहुँचता है, अपने कार्यों से वह जिन परिस्थितियों की रचना करता है, उनके अनुसार बदलता रहता है। परन्तु गांधीवादी सत्य अचल और अपरिवर्तन-शील है, वह मनुष्य की परिस्थितियों के अनुसार नयी व्यवस्था तैयार करना नहीं चाहता। जब परिवर्तन की आवश्यकता उसके सामने आकर खड़ी हो जाती है, वह समाज को पीछे की ओर ले जाने का ही यत्न करने लगता है।

गांधीवादियों का कहना है, गांधीवाद कोई नई वस्तु नहीं, वह केवल शाश्वत सत्य है। शाश्वत का अर्थ है, सदा एक अवस्था में रहने वाला। मनुष्य के जीवन में कोई परिस्थिति, कोई कार्य शाश्वत नहीं। इसलिये काल्पनिक शाश्वत सत्य मनुष्य की आवश्यकता पूरी नहीं कर सकता। अतीत की कल्पना के आधार पर खड़ा हुआ यह सत्य केवल मनुष्य को विकास के मार्ग पर रोकने का काम कर सकता है। इस प्रकार के शाश्वत सत्य को गढ़ने का किसी समय चाहे जो प्रयोजन रहा हो, आज उसका केवल एक ही उद्देश्य है। वह उद्देश्य है, सत्य को ईश्वर का अंग बताकर मनुष्य के वश और शक्ति से परे की वस्तु ठहरा देना। मनुष्य से आत्मनिर्णय का अधिकार छीनकर, ईश्वर प्रेरणा के फन्दे में उलझा देना।

मनुष्य को अनन्त, अनादि और शाश्वत सत्य, भगवान् का अंश स्वीकार कर लेने पर हम इस बात के लिये बाध्य हो जाते हैं कि समाज की व्यवस्था को भी शाश्वत सत्य समझ लें। समाज में यदि कहीं हमें अन्तरविरोध दिखाई दे, तो समाज की व्यवस्था को बदलने का हमें

अधिकार नहीं रह जाता बल्कि हम अन्तर विरोध को कुचल देने और उनके कारणों को दूरकर देने का स्वप्न देखने लगते है। समाज में अन्तर विरोध उस समय प्रकट होते हैं जब समाज एक मंज़िल को पार कर विकास की दूसरी मज़िल में पहुँचने का यत्न करता है। शाश्वत सत्य की रस्सी से समाज को अतीत से बाँध गांधीवाद नई व्यवस्था के लिये प्रयत्न के अधिकार से रोक देना चाहता है। गांधीवाद स्वयम् प्रगति के मार्ग पर न चल, आँखें मूँदकर भगवान् को पुकार केवल प्रार्थना करना चाहता है। गाधीवाद परिवर्तन और क्रान्ति से डरकर उन कारणों को ही दूर कर देना चाहता है जो परिवर्तन (क्रान्ति) के लिये अवस्था तैयार करते हैं। इसी उद्देश्य से गाधीवाद कहता है, मैशीनों को दूर करो! मैशीन ने समाज में पैदावार का तरीक़ा बदल दिया है इसलिये समाज की व्यवस्था और परस्पर सम्बन्ध बदल जाना भी ज़रूरी हो गया है। समाज में श्रेणियो के हितो का संघर्ष दूर करने के लिये व्यवस्था मे परिवर्तन करने की सलाह न दे वह दलितो को त्याग का उपदेश देता है! अर्थात् अपने हितो की चिन्ता न करो! परन्तु पीछे लौटने का यह ढग प्रकृति-विरुद्ध है। मनुष्य ने मैशीन का विकास गाधीवाद के भगवान की तरह लीला करने के लिये नही किया वह उसके हज़ारो पीढियो के परिश्रम का फल है और उसके भविष्य समाज की नींव है। गाधीवाद के कहने से वह मैशीन को छोड़ नहीं सकता। जिन श्रेणियो के हितो मे परस्पर विरोध है, उनके एक दूसरे को पिता और पुत्र समझ लेने से ही उनके विरोध दूर होकर शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

विकास जीवन का प्राकृतिक गुण है। विकास के मार्ग में अन्तर विरोध भी प्राकृतिक रूप से ही आता है। विकास होता है सीढ़ी-दर-सीढ़ी। प्राणियों या समाज की प्रत्येक अवस्था विकास की एक सीढ़ी है। एक अवस्था या व्यवस्था में समाज के लिये जितना विकास

सम्भव होता है, उसे प्राप्त कर लेने पर विकास का मार्ग आगे बन्द हो जाने से, समाज में अन्तर विरोध के रूप मे संघर्ष और हिंसा प्रकट होने लगती है। ऐसी अवस्था में परिवर्तन की ज़रूरत होती है। समाज गें मौजूद व्यवस्था में विरोध फूट पडते हैं। मौजूद व्यवस्था की स्थिति (Thesis) और विरोध की प्रतिस्थिति (Antithesis) में संघर्ष के परिणाम मे एक नया समन्वय (Snythsis) पैदा होता है, जो पहले मौजूद स्थिति और उसमें प्रकट हो जानेवाले विरोधो के समन्वय से आता है। संघर्ष के बाद समन्वय के परिणाम में पैदा होनेवाली व्यवस्था नये विकास के लिये स्थिति पैदा करती है। स्थिति में विरोध पैदा होना, और संघर्ष के परिणाम स्वरूप विकास के लिये नई स्थिति का पैदा होने का ऐतिहासिक क्रम समाजवादी विचारधारा का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) कहलाता है।

समाज के जीवन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का भेद हम इस प्रकार समझ सकते हैं :—हम एक समाज की कल्पना करते हैं जिसमें लोगों का निर्वाह मुख्यत खेती पर होता है। बडे-बड़े ठाकुर लोग भूमि के मालिक हैं। उनकी रियाया खेती करती है। मालिक की आज्ञा बिना यह लोग अपना घर-भूमि छोडकर कहीं नहीं जा सकते। प्रजा ठाकुर की भूमि जोतती है, उसे लगान देती है। अपनी जरूरत की वस्तुयें लोग स्वयं तैयार कर लेते है। उनकी आवश्यकतायें भी बहुत थोडी हैं। थोड़ा-बहुत व्यापार है। इस समाज में सुख शान्ति बसती है। ठाकुर पिता और प्रजा पुत्र समान है। इसे समाज की एक 'स्थिति' समझ लीजिये।

इस समाज में मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगती है परन्तु भूमि नहीं बढ़ती। भूमि के जिस टुकडे से पहले चार प्राणियों को निर्वाह होना था उससे अब छ को करना पडता है। ठाकुर अपना लगान लिये

जाता है। नई चीज़ें बाज़ारो में आने लगती हैं। छोटी मोटी मैशीन बनाकर लोग पहले से अधिक सामान तैयार करने लगते हैं। व्यापारी धन जमा करने लगते हैं। मैशीन द्वारा हाथ की अपेक्षा सस्ता और अधिक सामान तैयार होता है। व्यापार बढ़ता है, इसलिये कारीगर मैशीन का उपयोग करते हैं। सब कारीगर मैशीन का उपयोग नहीं कर सकते, इसलिये व्यापारी कारखाने खोलकर सामान तैयार कराते है। व्यापार बढ़ने से अधिक माल की जरूरत होती है। व्यापारियों को काम पर लगाने के लिये मज़दूर काफ़ी नहीं मिलते। मालिकों और मज़दूरो में झगड़ा होता है। मालिक देना तो कम चाहता है परन्तु मजबूर है। गाँवो मे ठाकुरों की भूमि में प्रजा अधिक बढ़ गई है। सभी लोग भूमि का एक टुकड़ा चाहते हैं इसलिये ठाकुर को पहले की अपेक्षा अधिक लगान लेने का मौक़ा है। एक तो प्रजा की संख्या बढ़ने और भूमि कम होने से कष्ट था, दूसरे लगान बढ़ने से कष्ट बढ़ा। ठाकुर के सन्तान बढ़ रही है, दूसरे उसे रुपये की अधिक ज़रूरत है क्योकि पहले से अधिक ऐश के सामान बाज़ार मे मिलते हैं। ठाकुर बनना चाहते हैं, पर वे ठकुराई कहाँ करें? ठाकुर की प्रजा चाहती है कि वह व्यापारियो के कारखानो में मज़दूरी कर निर्वाह करे, पर इस बात की आज्ञा नहीं। सभी ओर कष्ट और परस्पर विरोध पैदा हो जाते है। यह सब विरोध स्वयं समाज के भीतर से पैदा हो गये हैं। इन अन्तर विरोधो के कारण समाज का निर्वाह नहीं हो सकता। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहता है, 'स्थिति' मे 'प्रतिस्थिति' पैदा हो गई है इसलिये संघर्ष हो रहा है। आध्यात्मवाद कहता है, समाज में लोभ और हिंसा बढ गई है इसलिये पाप हो रहा है। द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद बताता है, क्रान्ति द्वारा व्यवस्था बदल कर नई स्थिति या समन्वय लाना चाहिए। आध्यात्मवाद कहता है, त्याग और सतोष करो, फिर पुरानी शान्ति आ जायगी।

समाज में क्रान्ति हो जाती है। नई व्यवस्था में निश्चय होता है, सब मनुष्य स्वतंत्र और समान है। किसी को किसी पर हुकूमत करने का अधिकार नहीं, सबको स्वतंत्रता है, जैसे चाहें परिश्रम करें, कमायें, धन इकट्ठा करें। किसी को किसी की सम्पत्ति छीनने का अधिकार नहीं। ठाकुर की प्रजा के जो लोग चाहते है, व्यापारियों के कारखानों में मज़दूरी करने लगते हैं। वे स्वतंत्र हो गये, जहाँ काम मिला, किया। मज़दूर काफ़ी मिलने लगी। निर्वाह के दूसरे साधन निकल आये। भूमि की तंगी महसूस नहीं होती। व्यापार और पैदावार बढ़ने लगे। नये अविष्कार होने लगे। सब और स्वतंत्रा, अधिकारों कीं समानता, और प्रजातंत्र कायम हो जाता है। समाज में व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति और विकास का मार्ग खुल जाता है।

समाज में क्रान्ति के बाद समन्वय से पैदा हुई स्थिति में जितना विकास हो सकता था हो गया। एक युग बाद उसकी भी सीमा आ जाती है। स्वतंत्रता से धन कमाकर इकट्ठा करने से परस्पर मुकाबिला होने लगता है। व्यापार के मुकाबिले में कम धनवान लोग निर्धन और धनी लोग बहुत अधिक धनवान हो जाते हैं। मज़दूरों की संख्या बहुत बढ़ जाती है परन्तु मैशीनों के विकास से थोड़े से ही आदमी बहुत-सी पैदावार कर लेते हैं। बेकारी फैल जाती है।। पैदावार के साधनों के मालिकों को अवसर रहता है कि पैदावार की मेहनत करनेवालों से चाहे जितना अधिक परिश्रम करायें और चाहें जितनी कम मज़दूरी दें। ऐसी अवस्था में आध्यात्मावाद कहता है—समाज में पाप और हिंसा फैल रही है, त्याग और सतोष से काम, लो, पुरानी अवस्था में लौट चलो! द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहता है—समाज में अन्तर विरोध फिर पैदा हो गये हैं। पैदावार के नये साधनों के अनुसार नये सिरे से संगठन करने की अवश्यकता हे। यदि हम लौट चलने की बात सोचें तो तिकनी सीढ़ियाँ उतरना पड़ेगा? हम वनमानुस की

स्थिति में पहुँचकर भी न रुक सकेंगे, क्योंकि इससे भी नीचे से विकास की सीढ़ी पर चढ़ना हमने शुरू किया था। मनुष्य स्वाभाव की प्रकृति आगे बढ़ना ही है।

आज हमारे समाज में क़दम-क़दम पर अव्यवस्था विरोध और हिंसा दिखाई दे रही है। इन विरोधों और हिंसा के कारणों की खोज-कर हम परिणाम पर पहुँचते हैं कि समाज की मौजूदा व्यवस्था में अन्तर विरोध पैदा हो गये हैं। इस समय नई व्यवस्था या समन्वय की आवश्यकता है। नई व्यवस्था के लिये नई विचारधारा की ज़रूरत है; जिसका अर्थ होता है कि सत्य, अहिंसा और धर्म की भावना का संस्कार नये सिरे से होना चाहिए। परन्तु गांधीवाद समाज से विरोध और हिंसा दूर करने का दावा करते समय कहता है कि वह किसी नये तत्व का अविष्कार नहीं कर रहा। गांधीवाद पुरानी जीर्ण परिस्थितियों में बने सत्य के शिकंजे को नई और बदली हुई परिस्थितियों पर जकड़ देना चाहता है। ऐसा करने का परिणाम होगा कि उस सत्य, अहिंसा और न्याय की पुरानी धारणा में तथा समाज की नई परिस्थितियों में लगातार संघर्ष होता रहेगा। यह संघर्ष उस समय तक होता रहेगा, जब तक कि समाज की जीवन, रक्षा और विकास की प्रवृत्ति सत्य, अहिंसा और न्याय की धारणा के पुराने समय के शिकजे को नई परिस्थितियों के अनुसार बदल नहीं देगी। यदि हम कल्पना करें कि पुराने समय की सत्य, अहिंसा और न्याय की धारणा के शिकंजे को गांधीवाद त्याग, सहनशीलता और अहिंसा की नई पुस्तियाँ और कील-काँटे लगा समाज को जकड़कर उसकी प्रवृत्तियों को घोंट देने और दबा देने लायक बना देगा, तो इसका अर्थ है कि समाज अधमरी अवस्था में सिसकता रहे। परन्तु ऐसा हो नहीं सकेगा, क्योंकि यह बात समाज की जीवन शक्ति और विकास की प्रवृति के विरुद्ध है।

इस देश को पुरानी परिस्थितियों की जीर्ण और बेकाम केंचुली उतार कर फेंकनी ही पड़ेगी। वह उसकी गति मे रुकावट पैदा कर रही है। शाश्वत, अनादि, अनन्त सत्य की इस पुरानी केंचुली को, जो अपने समय में अपना काम पूरा कर चुकी है, गांधीवाद का नया नाम दे देने से, उसे एक करोड़ बेर सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, सेवा और धर्म का नाम दे देने से भी वह उपयोगी नहीं बन सकेगी। उसे भगवान की प्रेरणा बताकर अंधविश्वास के सहारे आकर्षक बनाया जा सकता है परन्तु उपयोगी और सार्थक नहीं बनाया जा सकता। सत्य, अहिंसा और धर्म की उस धारणा को मनुष्य समाज ने जिस व्यवस्था की सहायता और रक्षा के लिये गढ़ा था, उसका उपयोग वह कर चुकी है। मनुष्य समाज उसका सार ग्रहण कर चुका है। अब वह केवल निस्सार फोक के समान है। उसे समाज के अंग में लिपटाये रहने से वह समाज को सशक्त नहीं बना सकेगी। समाज की नई आती हुई अवस्था में उपयोगी और सार्थक न होने के कारण वह न सत्य है न अहिंसा, न धर्म, क्योंकि वह समाज के लिये जीवन रक्षा और विकास का साधना नहीं बन सकती। बीते हुए समय को परिस्थितियों में पैदा हुई यह धारणा यदि समाज के मस्तिष्क से चिपटी रहेगी,, तो इसका परिणाम होगा कि जीवन रक्षा और विकास के मार्ग में, समाज की प्रगति में रुकावट आती रहेंगी।

सत्य और धर्म की खोज

धर्म की खोज में मनुष्य खूब बावला बनता है। वह धर्म के अस्तित्व को अपने जीवन में अनुभव तो करता है परन्तु उसे पकड़ नहीं पाता। ठीक उसी तरह जिस तरह कस्तूर-हिरन कस्तूरी की सुगंध को अनुभव कर उसे पाने के लिये उल्टी-सीधी छलाँगे लगाता है परन्तु पा नहीं सकता। जन साधारण का विश्वास के है कि कस्तूरी

हिरन के पेट में ही रहती है। वही अवस्था मनुष्य के धर्म की भी है। धर्म जीवित रहने का प्रयत्न है। यह धर्म मनुष्य के जीवन और शरीर में ही रहता है; परन्तु वह उसकी खोज करता है, न जाने कहाँ-कहाँ? मंदिर, मसजिद, गिरजे में और अनन्त, अनादि, शाश्वत, सत्य परमेश्वर में। धर्म को मनुष्य अपने विश्वास से ही बनाता है। जीवन का वह उद्देश्य जिसकी पूर्ति के लिये धर्म का साधन बनाया जाता है, मनुष्य की शक्ति और प्रयत्न से ही पूरा होता है।

धर्म क्या है; यह प्रश्न बार-बार क्यों उठता है? इसलिये कि धर्म बार-बार नये रूपों में हमारे सामने आता है। एक प्रकार की परिस्थियों में जीवन के लिये रक्षा और विकास का एक क्रम तैयार कर हम उसे धर्म का नाम देते हैं। परिस्थितियों के बदल जाने पर नये ढाँचे में वह क्रम ठीक नहीं बैठता, इसलिये नये कार्य-क्रम की ज़रूरत पड़ती है और धर्म के विषय में विवाद आरम्भ हो जाता है। परिस्थितियों के अनुसार बदलनेवाले धर्म के अतिरिक्त क्या धर्म का कोई ऐसा मूल तत्व भी है, जो बदलते हुए धर्म के कार्य-क्रम की बुनियाद में स्थिर रहता है? धर्म के इस मूलतत्व की पहचान बताने के लिये धर्म गुरुओं और नीतिज्ञों ने उपदेश दिया है।

"आहार निद्रा भय मैथुनच सामान्यमेतत पशुभिर्नराणाम्,
धर्मोहि तेशामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिसमाना।"

खाना पीना, नींद लेना, संतानोत्पत्ति यह सब तो मनुष्यों और पशुओं में समान हैं। मनुष्य की विशेषता यह है कि उसके 'धर्म' और अधिक है। उसके न होने से मनुष्य बेसींग और पूंछ का पशु है। इस मूलभूत धर्म से हमारे ऋषियों का अभिप्राय क्या है; सो उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। शायद उनका अभिप्राय रहा हो कि पशु तो प्रकृति में पैदा होकर जैसी अवस्था और परिस्थिति पाते हैं, उसके आधीन रहकर जीवित रहने का प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु मनुष्य स्वयम् कार्य-

क्रम बनाकर जीवन को चलाता है। वह कौन काम है, जिसे पशु नहीं करता और मनुष्य करता है ? इस प्रश्न का स्पष्ट और क्रियात्मक उत्तर दिया है, समाजवाद के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक रूप देनेवाले विद्वान् कार्ल मार्क्स ने। मार्क्स का कहना है—पशु जिन प्राकृतिक अवस्थाओं मे पैदा होते है, जब तक सम्भव होता है, उन्हीं मे निर्वाह करते हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों के बदलने पर वे अपने जीवन का क्रम बदलने की चेष्टा करते है और स्वय भी बदल जाते हैं। पशुओ को प्रकृति में जीवन के साधन जैसे मिलते हैं, उनका प्रयोग कर वे जीवन रक्षा करते हैं। परन्तु मनुष्य अपने लिये जीवन के साधन, या जीवन के लिये आवश्यक पदार्थों को पैदा करने के साधन स्वयं उत्पन्न करता है। यह है अन्तर मनुष्य और पशु में जो मनुष्यत्व की नींव है, मनुष्य के धर्म का मूलतत्व है। इस सत्य को आधार बनाकर चलने से आध्यात्मवाद और काल्पनिक धर्म की बुनियाद पर खड़ा दर्शन शास्त्र, जिसका कि गांधीवाद सिसकता हुआ रूप है, क्रियात्मक और कर्मशील दर्शन में बदल जाता है। जिस दर्शन शास्त्र में मनुष्य भाग्य या—अनादि, अनन्त शाश्वत शक्ति के हाथ का खिलौना न रहकर- अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता बन जाता है।

मनुष्य अपने जीवन के साधनो या पैदावार के साधनो को स्वयं बनाता है, यह मामूली बात नहीं। इस शक्ति से मनुष्य अन्य जीवो की भाँति प्रकृति की दया पर निर्भर नहीं रहता। अन्य जीवो के लिये परिस्थिति का अर्थ है, भौतिक और प्राकृतिक परिस्थितियाँ। मनुष्य के लिये परिस्थिति का अर्थ भौतिक और प्राकृतिक परिस्थितियो के इलावा उन परिस्थितियो से भी है जिन्हें मनुष्य स्वयम् तैयार कर लेता है। मनुष्य द्वारा तैयार की गई परिस्थिति से अभिप्राय उसके बनाये पैदावार के साधनो, इनके विकास और समाज की व्यवस्था से है। पैदावार और बँटवारे की व्यवस्था और साधनो में परिवर्तन आने से

समाज को न्याय के मार्ग पर रखना चाहते हैं, ईश्वर विश्वास का एक दूसरा ही प्रयाजन प्रकट करती हैं। अर्थात् जो लोग विद्वान् है, शक्ति सम्पन्न हैं, उनके लिये ईश्वर का होना न होना बराबर है। ईश्वर का भय या विश्वास उन्हीं लोगों के लिये आवश्यक है, जो सत्य, धर्म और उचित को स्त्रय नहीं पहचान सकते।

सत्य धर्म और उचित को कौन पहचान सकता है और कौन नहीं पहचान सकता, यह बात बहुत हद तक इस बात पर भी निर्भर करती है, कि सत्य, धर्म और उचित क्या है, और उसे निश्चित किसने किया है। जो व्यक्ति या श्रेणी सत्य, धर्म, उचित और न्याय का निश्चय करती है, उन लोगों का उस श्रेणी को सत्य धर्म और न्याय को समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। क्योंकि सत्य, धर्म और न्याय स्वयं उन्हीं को इच्छा के अनुसार, स्वयं उन्हीं के मस्तिष्क से, उनकी आवश्यकताओं और हितों को पूरा करने के लिये पैदा होते हैं। इस प्रकार के धर्म और न्याय का पालन करने के लिये इन लोगो को किसी भय की आवश्यकता नहीं, न समाज में क़ायम शासन की, न ईश्वर की आज्ञा की।

समाज में क़ायम शासन और ईश्वर की आज्ञा के भय से धर्म और न्याय पालन उन्हीं लोगों से कराने की आवश्यकता होती है, जो समाज के शासन में अपना लाभ नहीं देखते, जिनका शोषण करने के लिये उन्हें वश में रखने की आवश्यकता होती हे। दूसरी श्रेणी को वश में रखकर, शोषण करनेवाली श्रेणी अपनी स्थिति और अधिकार बनाये रखने के लिये ही सरकार कायम करती है। यह श्रेणी अपने हित की व्यवस्था की रक्षा के लिये नियम बनाती है और इन नियमो को अपनी शक्ति द्वारा समाज के असंतुष्ट और अधिकांश भाग पर लागू करती है।

जैसे दूसरी शक्तियाँ हैं, वैसे ही एक शक्ति विश्वास की भी है।

न्याय की धारणा निश्चित करती है। इसे पक्षपात भी नहीं कहा जा सकता। आधिपत्य करनेवाली श्रेणी की दृष्टि में उस श्रेणी की जीवन रक्षा और विकास का अवसर देनेवाली व्यवस्था ही न्याय सत्य और धर्म है। इस न्याय, सत्य और धर्म के लिये वे या उस श्रेणी के कुछ लोग प्राण तक न्योछावर कर सकते हैं। परन्तु इन लोगों के इस बलिदान से भी ऐसी व्यवस्था शोषित लोगो के लिये न्याय नहीं बन सकती।

इसके विपरीत शोषित या दलित श्रेणी शक्ति संचय कर जब समाज की व्यवस्था में परिवर्तन कर देती है, तब सत्य, धर्म, न्याय की धारणा और ईश्वर की आज्ञा बदल जाती है। ठाकुरशाही के * समय राजा और ठाकुर को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। जनसाधारण पर उन्हें शासन करने का अधिकार भगवान् द्वारा दिया गया समझा जाता था। परन्तु जब मध्यम वर्ग ने क्रान्ति कर शासन की बागडोर अपने हाथ में लेली, समाज का शासन उन्हीं लोगों के हितों की दृष्टि से होने लगा। इस परिवर्वन से सत्य, धर्म और न्याय की धारणा का पुराना रूप बदल गया। पहले विश्वास किया जाता था, राजा या सरदार भगवान् के प्रतिनिधि हैं और उन्हें प्रजा पर शासन करने का अधिकार भगवान् ने दिया है। राजा के विरुद्ध आवाज़ उठाना महापाप है। प्रजातंत्र व्यवस्था क़ायम होने पर कहा जाने लगा, भगवान् ने सब मनुष्यो को एक समान पैदा किया है। स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है। गुलामी की प्रथा महापाप और अत्याचार है। इसी प्रकार आज हमारे समाज में पूंजीपति और ज़मींदार श्रेणी का प्रभुत्व है, इसलिये समाज की व्यवस्था मे सम्पत्ति की रक्षा के नियमों के अनुसार होता है।

पूंजीवाद का आधार है, सम्पत्ति पर व्यक्ति के स्वामित्व का

* ठाकुरशाही से अभिप्राय सामन्तकाल स है।

अधिकार। इसलिये इस समाज में किसी की भूमि से एक तिनका तोड़ लेना पाप और हिंसा है, किसी की संचित सम्पत्ति में से एक चावल उठा लेना अन्याय और अपराध है। परन्तु हज़ारों मनुष्यों से अधिक मूल्य का काम कराकर, उन्हें उनके परिश्रम कर कम मूल्य देकर, उनके परिश्रम के फल की चोरी कर लेना पाप नहीं। पूंजवादी और ज़मींदारी प्रणाली का सत्य, अहिंसा, धर्म और न्याय इस एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है।

मौजूदा समाज में इसी सत्य, अहिंसा, धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा है और इस धर्म पर भगवान् की स्वीकृति की मोहर लगी हुई है। गांधीवाद इसी सत्य, अहिंसा और धर्म की प्रतिष्ठा से रामराज्य द्वारा समाज में सुख शान्ति और न्याय कायम करना चाहता है। परन्तु पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी की सत्य अहिंसा गांधीवाद का समर्थन पाकर भी, जिनका शोषण इस व्यवस्था द्वारा हो रहा है। उस श्रेणी के लिये सत्य अहिंसा नहीं बन सकती, क्योंकि इस सत्य, अहिंसा से शोषित श्रेणियाँ—किसान, मज़दूर और मध्यम श्रेणी के नौकरी पेशा लोगों के जीवन की रक्षा और विकास नहीं हो सकता। यह श्रेणी यदि जीवन रक्षा और विकास का अधिकार चाहती है, तो उसे इस उद्देश्य को पूर्ण करनेवाली सत्य और अहिंसा को स्थापित करना होगा। यह सत्य वर्तमान मनुष्य समाज की परिस्थितियों, उसके जीवन निर्वाह के साधनों और ढंग को देखकर ही निश्चित करना होगा।

आध्यात्मिक सत्य-अहिंसा

मनुष्य क्या करना चाहता है, क्या उचित समझता है, इस बात का प्रभाव व्यक्ति के जीवन और समाज की व्यवस्था पर बहुत हद तक पड़ता है। मनुष्य किस बात को चाहता है, उचित-अनुचित समझता है, इसपर उसकी विचारधारा का प्रभाव पड़ता है। समाज अपने बीते

हुए जीवन के अनुभवों और उद्देश्य के आधार पर भविष्य में अपने लिये राह निश्चित करता है। प्राकृतिक परिस्थितियाँ भी मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालती हैं, परन्तु वैसे ही मनुष्य द्वारा स्वयम् तैयार की गई परिस्थितियों का प्रभाव उस पर पड़ता है। मनुष्य की विचार-धारा, उसकी न्याय-अन्याय की धारणा भी उसकी परिस्थितियो का अंग होती हैं। किन सिद्धान्तों पर चल कर मनुष्य को अपना मार्ग निश्चित करना चाहिए, इस विषय में दो प्रकार के विचार हैं। एक पद्धति को आध्यात्मवाद और दूसरी को भौतिकवाद कहा जाता है।

आध्यात्मवाद सृष्टि और मनुष्य से परे अलौकिक शक्ति मे विश्वास रखता है। उस शक्ति को ईश्वर का नाम दिया गया है। ईश्वर की परिभाषा और परिचय कई प्रकार से दिया जाता है परन्तु हम यहाँ गांधीवाद की परिभाषा को लेकर ही चलेंगे, क्योंकि गांधीवाद का यह दावा है कि ईश्वरवादी सम्प्रदायों में किसी प्रकार के मतभेद की ज़रूरत नहीं। गांधीवाद के अनुसार ईश्वर की परिभाषा एक दफ़े हम ऊपर दे आये हैं, "ईश्वर अनन्त, अनादि, सदा एक रूप रहनेवाला, विश्व का आत्मारूप अथवा आधाररूप और उसका कारण है। वह चेतन अथवा ज्ञानस्वरूप है। उसी का एक सनातन अस्तित्व है। शेष सब नाशवान हैं।' वास्तव में सृष्टि और सृष्टि के अंग मनुष्य को ईश्वर ने बनाया है या नहीं; ईश्वर ने नहीं बनाया, तो किसने बनाया, ईश्वर को किसने बनाया है, यदि ईश्वर स्वयम् पैदा हो सकता है, तो सृष्टि स्वयम् पैदा क्यों नहीं हो सकती; आदि प्रश्नो को छोड़कर हम केवल यह देखने का यत्न करेंगे कि सृष्टि और मनुष्य समाज के क्रम मे ज्ञानस्वरूप, चेतन और अनादि, अनन्त परमेश्वर के विधान का आभास मिलता है या नहीं ?

सृष्टि की रचना और विकास में भगवान् या किसी अलौकिक शक्ति का विधान होने का अर्थ है, कि सृष्टि की रचना एक निश्चित उद्देश्य से

ईश्वरवाद और आध्यात्मवाद की रस्सी से बाँध ईश्वर के विधान से पैदा हो गये संघर्ष, विरोध, हिंसा और पाप के भँवर में असहाय छोड़ देता है।

सब कुछ भगवान् की इच्छा से है, यह मान लेने के बाद मनुष्य को व्यक्तिगत और सामाजिक रूप से सुधारने और उन्नत बनाने के प्रयत्न का कोई अर्थ नहीं रह जाता। उसे सत्य, धर्म और अहिंसा का उपदेश देना भी व्यर्थ है; क्योंकि मनुष्य तो कठपुतली मात्र है, जिसका धागा भगवान् खींचते है। कठपुतली यदि ठीक ढंग से नहीं नाचती, उसके हाथ पैर उलटे और बेढंगे चलते है तो इसका उत्तरदायित्व रस्सी खींचनेवाले पर है, कठपुतली पर नहीं। भगवान् को सृष्टि का रचयिता और सचालक मान लेने पर भगवान् की इच्छा ही सत्य और धर्म मानी जायगी और भगवान् की इच्छा ही मनुष्य के दुष्कृत्यों का कारण होगी, तो फिर सत्य, धर्म और मनुष्य के पाप में अंतर कहाँ रहता है? यही कहना कठिन हो जायगा कि कौन काम सत्य तथा धर्म है और कौन काम पाप। इस प्रकार की विचारधारा के प्रभाव से ही मनुष्य निराश होकर कहने लगता है, सब कुछ भगवान् की इच्छा और लीला मात्र है। यह संसार और मनुष्य के प्रयत्न सब माया और भ्रम है, मनुष्य का उद्देश्य केवल ईश्वर से साक्षात्कार करना ही होना चाहिए। यही तो गांधीवाद है, जिसकी जड़ में संघर्ष से भय की निराशावादी और हतोत्साह मनोवृत्ति मौजूद है।

संसार और संसार के संघर्ष को केवल भगवान् की माया समझने कि विचारधारा का परिणाम होता है कि मनुष्य शान्ति और संतोष की खोज में संघर्ष न कर कल्पना करने लगता है। संसार की वास्तविकता को वह माया समझकर उससे उदास होकर निष्क्रियता में जीवन की सफलता समझने लगता है। निष्क्रियता को त्याग का नाम दिया जाता है। संसार में सघर्ष है, संघर्ष में कठिनाई और विरोध भी सामने आता है।

जब मनुष्य को यह विश्वास हो कि संसार नश्वर, मिथ्या और माया ही है, अनन्त और अनादि केवल भगवान् हैं तो वह मिथ्या और माया के लिये संघर्ष और कठिनाई का मुक़ाबिला कर संसार में आगे बढ़ने की चेष्टा क्यों करेगा ? क्यों न पूर्ण भगवान् की गोद में सिर छिपा, कल्पना में ही सुख ढूँढ़ने लगेगा ? ऐसी भावना व्यक्ति को समाज के लिये अनुपयोगी और बोझ बना देती है। यह भावना जिस समाज में घर कर जाती है, वह समाज संसार के संघर्ष में प्रकृति और परिस्थितियों पर विजय पाने का उत्साह छोड़, एक काल्पनिक नशे से शान्ति और संतोष प्राप्त करने के स्वप्न देखने लगता है। ऐसे समाज में वीरता संघर्ष द्वारा आगे बढ़ने में नहीं बल्कि कुछ न कर, कष्ट सहने और कष्ट को कष्ट न समझने में ही समझी जाती है। ऐसे समाज में कष्ट के कारणों को दूर कर जीवन को समर्थ बनाने और आवश्यकताओं को पूर्ण करने को 'भोग' समझा जाता है। आवश्यकताओं को कम करने और अपनी आवश्यकताओं को भुलाकर अपने आपको सुखी समझने और ऐसा ही विश्वास करने का उपदेश दिया जाता है।

समाज में ऐसी मानसिक अवस्था या विचारधारा उस समय आ जाती है जब समाज किसी एक मंज़िल की परिस्थितियों में जितनी उन्नति सम्भव होती है, कर लेता है और विकास द्वारा आगे बढ़ने के मार्ग में अड़चनें आने लगती हैं। इन अड़चनों के कारण स्वाभाविक तौर पर समाज में असंतोष अनुभव होने लगता है और संघर्ष की आशंका पैदा हो जाती है। असंतोष दूर हो सकता है संघर्ष द्वारा अड़चनों को दूर करने से। अड़चनों को दूर करने के लिये समाज में शक्ति, समृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त करने की भावना होनी चाहिये। यदि असंतोष को दूर करने का उपाय त्याग और मुक्ति की खोज समझा दिया जायगा तो समाज असंतोष को दूर करने के लिये संघर्ष द्वारा विकास के प्रयत्न को छोड़ शिथिलता की ओर जाने लगेगा।

समाज की व्यवस्था में अनुभव होनेवाली अड़चनों को परिवर्तन या क्रान्ति द्वारा ही दूर किया जा सकता है। क्रान्ति समाज के असंतुष्ट लोग ही करते हैं। समाज की शासक श्रेणी, जो मौजूदा व्यवस्था से संतुष्ट रहती है, क्रान्ति का विरोध करती है। समाज मे परिवर्तन को रोकने के लिये यह श्रेणी सदा ही आवश्यकताओं को पूरा करने की निन्दा और त्याग और संतोष द्वारा काल्पनिक आत्मिक शांति पाने और स्वर्ग प्राप्त करने का उपदेश देती है, ताकि उनके हाथ से अधिकार छीनने का प्रयत्न न किया जा सके। इस प्रकार की भावना से शासक श्रेणी और धर्माचार्य श्रेणी, जो समाज की ऐसी ही भावनाओ पर जीवित रहती है, दोनों का ही लाभ होता है। भारतवर्ष में ऐसा ही हुआ। खेती के युग की व्यवस्था में क़बीलों द्वारा शासन पद्धति चलाकर भारतीय समाज जितनी उन्नति सम्भव थी कर चुका, तब समाज में असंतोष के लक्षण दिखाई देने लगे। क़बीलों की व्यवस्था में ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। राजा को ब्राह्मण के इशारे पर नाचना पड़ता था। *

ब्राह्मण धर्म का आवरण पहन कर भारतीय समाज में एक श्रेणी राज्य कर रही थी। बौद्ध धर्म की क्रान्ति के रूप में निम्न श्रेणी के क्षत्रियों, शूद्रों तथा सर्व साधारण ने असंतोष प्रकट कर व्यवस्था में परिवर्तन करने का प्रयत्न शुरू किया। उस समय असंतोष और विद्रोह की लहर को दबाने के लिये गीता उपनिषदो तथा दूसरे धार्मिक ग्रन्थो के रूप में अध्यात्मिकता की एक लहर आयी, जिसने सांसारिकता को व्यर्थ माया बताकर सत्य और धर्म के पालन त्याग संतोष-द्वारा मोक्ष की राह बता सामाजिक संघर्ष को शिथिल कर दिया। बौद्ध धर्म समानता और अहिंसा का उपदेश देता था। बौद्ध धर्म की अहिंसा

* पुराणों तथा इतिहास में ब्राह्मणों और क्षत्रियों मे स्थान-स्थान पर युद्ध होने के जो वर्णन मिलते हैं वे क्षत्रियों के विद्रोह की ओर संकेत करते हैं।

निम्न श्रेणियों की अधिकार की माँग थी, जो शक्ति प्रयोग और वर्ण व्यवस्था के अधिकारों से होनेवाली हिंसा को मिटा देना चाहती थी। इस अहिंसा का प्रयोजन था, समाज से उन विषमताओं और अड़चनों को दूर करना, जिन्होने सर्व साधारण जनता को बेबस कर दिया था। यह अहिंसा सांसारिक थी। ब्राह्मण धर्म ने इस सांसारिकता को आध्यात्मिकता से दबा कर जनता में संतोष और त्याग की शिथिलता का प्रचार किया। परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज संघर्ष के मार्ग से हट गया और उसका विकास भी शिथिल हो गया। इस आध्यात्मिकता ने भारत में ब्राह्मण धर्म की शरण ले राज्य करनेवाले समाज के अधिकारों की रक्षा तो उस समय करदी परन्तु सर्व साधारण जनता को निस्तेज और शिथिल कर दिया। इसका परिणाम हुआ कि देश आनेवाले विदेशी आक्रमणो का मुकाबला सफलता पूर्वक न कर सका।

इसके पश्चात् आध्यात्मिकता की प्रबल लहर इस देश में मुग़लों के राज्य के अन्तिम भाग में आई। इस समय के आध्यात्मिक नेता तुलसी, कबीर, नरसी भगत आदि थे। यह वह समय था जब मुगलों के शासनकाल में छोटे-छोटे राजाओं में नित्य के युद्धों और ठाकुरशाही की दुरावस्था के कारण देश की जनता अपने जीवन के मार्ग में अड़चनें अनुभव कर रही थी। इसी समय योरुप में भी ऐसी अवस्था आई। योरुप के समाज ने अपने मार्ग में आनेवाले अन्तरविरोधो और अड़चनों को राजनैतिक क्षेत्र में प्रजातंत्र क्रान्तियोंद्वारा तथा आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिक क्रान्ति द्वारा दूर किया। योरुप में भी क्रान्ति की भावना को दबा देने के लिये त्याग का उपदेश देनेवाले अनेक सम्प्रदाय जेसुइस्टूस, क्वेकर्स, प्रोटस्टेन्टस, कालविनिस्टूस आदि पैदा हुए परन्तु औद्योगिक विकास के प्रवाह के सामने रुक न सके।

भारत में सर्वसाधारण इतने जागरित और संगठित न थे कि ठाकुरशाही के शासन से अपने को छुड़ा पाते। औद्योगिक विकास भी यहाँ

ऐसे समय नहीं हुआ इसलिये जनता ने अपने, असंतोष, दुख और संकट को भक्ति, त्याग, वैराग्य और मोक्ष के भँवर मे डुबोकर शान्ति ग्रहण करनी चाही।

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सन्तोष और सफलता प्राप्त करने के लिये सघर्ष द्वारा अड़चनों को दूर करना आवश्यक होता है। श्रेणियों का संघर्ष भी सामाजिक जीवन का अंग है। इस संघर्ष से कतरा कर काल्पनिक संतोष द्वारा अपने आप को सफल समझने के लिये आध्यात्मिकता और वैराग्य की शरण ली जाती है। आध्यात्मिकता और वैराग्य समाज को संघर्ष और विकास के मार्ग से हटा देते हैं।

समाज की शासक और सम्पत्ति की मालिक श्रेणी स्वयं धन सम्पत्ति, और शासन का अधिकार समेट कर भी सदा वैराग्य, आध्यात्मिकता और महात्मापन का आदर करती है। यह श्रेणी परिवर्तन से डरती है, क्योंकि परिवर्तन इन्हें हाकिम और मालिक की स्थिति से हटा देगा। गांधीवाद समाज में आते हुए परिवर्तन को रोकने के लिये पुराने समय की मरी हुई नैतिकता की किलावन्दी कर सम्पन्न और ठाकुर श्रेणी के अधिकारों की रक्षा करना चाहता है। इसीलिये इस देश की सम्पन्न मालिक श्रेणी उसके प्रचार में सहायक बन रही है।

कांग्रेस की गांधीवादी नीति

सत्य-अहिंसा का क्रियात्मक रूप

गांधीवाद का नाम देकर आध्यात्मवाद की लहर भारत में उठाने का जो प्रयत्न किया जा रहा है उसके राजनैतिक और आर्थिक कारण बहुत स्पष्ट हैं। भारत की मौजूदा अवस्था में एक राजनैतिक और आर्थिक संघर्ष चल रहा है। इस राजनैतिक संघर्ष में अनेक शाखायें फूट निकली है, परन्तु इसका आरम्भ हुआ था भारत को विदेशी गुलामी से छुड़ा भारतवासियो का राज्य क़ायम करने की भावना से। विदेशी गुलामी बुरी चीज है, इसमें किसी को भी संदेह नहीं।

परन्तु आज़ादी मिले कैसे? कांग्रेस आज़ादी के लिये प्रयत्न करने वाली सबसे बड़ी संस्था है परन्तु उसका मार्ग विचित्र है। कांग्रेस का इतिहास अनेक महत्त्व पूर्ण बातों की ओर हमारा ध्यान दिलाता है। कांग्रेस का राष्ट्रीय अन्दोलन आरम्भ हुआ भारत की ऊँची श्रेणियो में। कांग्रेस की शुरू की माँग थी—भारतीयों को भी ऊँचे सरकारी ओहदो में जगह मिले। अँग्रेज़ों की जगह भारतीय शासक और अफ़सर हो जाने से उस समय कांग्रेस को कोई आपत्ति या एतराज़ न रहता। भारत में अंग्रेजी राज के बारे में कोई शिकायत न कर उस समय की कांग्रेस अँग्रेजों के प्रति पक्षपात से नाराज़ थी। उस समय की कांग्रेस यदि किसी भारतीय को वायसराय का पद दिला सकती तो स्वराज्य मिल गया समझा जाता। उस समय कांग्रेस का उद्देश्य सरकार का भारतीय-करण (Indianisation) ही था। आज दिन भी कांग्रेस का उद्देश्य वास्तव में बहुत हद तक यही है

परन्तु उसमें और बहुत सी समस्यायें आ मिली हैं। कांग्रेस की नीति और माँगों मे दूसरी अनेक बातें शामिल होने का कारण भारत की ऊँची श्रेणी के दूसरे अंग व्यापारियों, ज़मींदारों आदि का उसमें शामिल हो जाना है। इस समय स्वराज्य का एक बिलकुल दूसरा अर्थ समझने वाली जनता भी देश मे पैदा हो गई है परन्तु इस जनता का अधिकार अभी कांग्रेस पर नहीं हो पाया है। इस जनता को कांग्रेसी स्वराज्य का प्रतिद्वन्दी स्वराज्य माँगनेवाला दल समझा जाता है।

भारत से विदेशी गुलामी दूर कर भारत मे अपना राज्य स्थापित करनेवाले संगठन मे भारत के व्यापारियों के सम्मिलित हो जाने पर देश के लिये व्यापारिक सुविधा आदि की माँगें भी पेश होने लगीं स्वदेशी का नारा भी बुलन्द हुआ। इन माँगों के पूरा हो जाने का अर्थ है, भारत की पूँजीपति, ज़मींदार और सम्पत्ति की मालिक श्रेणियों के हाथ देश का शासन आ जाय। सम्पत्ति की मालिक श्रेणी संख्या मे बहुत छोटी है। यह श्रेणी देश की आबादी की एक फीसदी भी नहीं। निन्नानवे फीसदी से अधिक जनता सम्पत्ति और साधनो से हीन है। स्वराज्य केवल सम्पत्तिशाली लोगो के प्रयत्न से ही नहीं मिल सकता। इसके लिये सर्वसाधारण जनता की शक्ति की ज़रूरत है। ख़ासकर हमारे देश में, जहाँ विदेशी सरकार पर दबाव डालने का उपाय केवल जनता की पुकार ही है। स्वराज्य का आन्दोलन तभी सफल हो सकता है जब कि भारत की ९९ फ़ीसदी, साधनहीन निम्न श्रेणियाँ भी इस संघर्ष में सम्पत्तिशाली श्रेणी का साथ दें। इस सत्य को लोकमान्य बाल-गंगाधर तिलक ने समझा। सर्व साधारण जनता को स्वराज्य के मोर्चे पर लाने के लिये उन्होंने नारा लगाया कि स्वराज्य भारतीय जनता का जन्म सिद्ध अधिकार है। इस नारे को लेकर महात्मा गांधी आगे बढ़े और उन्होने कांग्रेस को जनता की शक्ति से सबल बनाया। महात्मा गांधी ने सात पैसे रोज़ कमानेवाले मज़दूर और गांवो में रहनेवाली

किसान जनता के दुख की ओर ध्यान दिला देश की जनता की सहानुभूति कांग्रेस के प्रति आकर्षित की।

भारत की विदेशी गुलामी के खिलाफ़ लड़नेवाली एक शक्ति भारत के आतकवादी क्रान्तिकारी भी थे। अनेक कुर्बानियाँ करके भी वे कोई ठोस सफलता प्राप्त नहीं कर सके, क्योंकि उनका कार्य-क्रम देश की जनता को साथ लेकर नहीं चल सकता था। उनके काम राष्ट्रीय भावना के कारण थे, यह तो स्वय विदेशी सरकार ने भी स्वीकार किया है। इन लोगों के उग्र राष्ट्रीय कार्यों को, जिनमें हिंसा और सशस्त्र विद्रोह भी शामिल थे, दबाने के लिये सरकार ने रौलट बिल के नाम से व्यापक और दमनकारी कानून बनाया। इस कानून का उद्देश्य न केवल हिंसात्मक राष्ट्रीय कार्यों को रोकना था बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय भावना की ही जड काट देना था। सरकार के इस राष्ट्रीय दमन ने मध्यम श्रेणी की राष्ट्रीय भावना को चोट पहुँचाई और वे लोग सरकारी कानून के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करने के लिये तैयार हो गये। यह विरोध निःशस्त्र था। नि शस्त्र विरोध के अतिरिक्त और कोई दूसरा तरीका सार्वजनिक विरोध को प्रकट करने का था भी नहीं। सरकार ने पूरी शक्ति से इस विरोध का दमन किया जिसके परिणाम स्वरूप पंजाब में भयंकर हत्याकांड हुए। इस दमन के विरोध ने कांग्रेस की पुकार जनता तक पहुँचाई। सरकारी दमन से छुटकारा पाने के लिये जनता का सार्वजनिक आन्दोलन विराट रूप में जारी हुआ। इस आन्दोलन का नेतृत्व सौंपा गया महात्मा गांधी के हाथ में क्योंकि वे दक्षिण अफ्रीका में सार्वजनिक आन्दोलन का अनुभव हासिल कर चुके थे और एक महात्मा होने के नाते जनता की भक्ति उनकी ओर थी।

सन् १९२० के कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन की कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। इस आन्दोलन का आरम्भ हुआ सरकार के उग्र दमन के विरोध में जो मध्यम श्रेणी के राजनैतिक दृष्टि से सचेत लोगों पर

हो रहा था। इस आन्दोलन की भावना थी, भारतवासियों को अपने देश पर शासन का अधिकार मिले और भारत की व्यापारिक लूट बन्द हो। इस आन्दोलन को लेकर शहरों में रहनेवाले मध्यम श्रेणी के लोग आगे बढ़े। महात्मा गांधी ने इसी श्रेणी पर भरोसा कर स्वराज्य की वैधानिक लडाई आरम्भ की। महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय लडाई के मोर्चे पर सरकार के उपाधि धारी लोगो, वकीलों, सरकारी नौकरो, विदेशी सामान के व्यापारियों और स्कूल कॉलिजों के विद्यार्थियो को पुकारा।

सरकार से असहयोग कर उसकी व्यवस्था को असम्भव कर देने का प्रोग्राम बनाया गया ताकि सरकार अपना काम चलता न देख इस आन्दोलन की मॉगों को पूरा करने के लिये मजबूर हो जाय। सरकार पर दबाव डालने के लिये आम जनता को भी सत्याग्रह के मोर्चे पर लाया गया। देश के किसानों और मज़दूरो से भी विरोध प्रदर्शन कर जेल जाने के लिये कहा गया ताकि सरकार का काम और अधिक कठिन हो जाय। किसानों, मज़दूरों से स्वराज्य के लिये त्याग कर जेल जाने के लिये तो कहा गया परन्तु इन लोगों को अनुभव होनेवाली किसी कठिनाई को दूर करने का ज़िक्र उस आन्दोलन के कार्य-क्रम में न था। एक गोल-मोल वायदा ज़रूर था कि देश का शासन भारतवासियो के हाथ में आ जाने पर देश के सभी निवासियो के कष्ट, भूख, दरिद्रता, अशिक्षा बेकारी मिट जायँगे।

देश की साधन सम्पन्न श्रेणी के लिये और उसकी आधीनता में मध्यम श्रेणी के लिये शासन का अधिकार प्राप्त करने के इस कार्य-क्रम को आम जनता की क़ुर्बानी के बल पर सफल बना लेने का महात्मा गांधी को इतना दृढ़ विश्वास था कि उन्होंने एक वर्ष में स्वराज्य लेकर दिखा देने की प्रतिज्ञा करली। मुस्लिम जनता को आन्दोलन में समेटने के लिये ख़िलाफ़त का प्रश्न उठाया गया। जिस प्रकार देश

की शेष जनता के सामने उनकी अवस्था में सुधार करने की व
माँग रखे बिना उन्हें देश भक्ति की भावुकता पर भड़काने की कोशि
की गई, उसी प्रकार मुस्लिम जनता को भी धर्म के नाम पर उभा
का यत्न किया गया। इस देश के मुसलमानो का ख़िलाफ़त से
लाभ न था बल्कि ख़िलाफ़त की 'आध्यात्मिक' हुकूमत से छूट कर
टर्की योरुप में एक शक्ति बन सका है।

सन् १६२० के सत्याग्रह में पूँजीपति और मध्यम श्रेणी के रा
नैतिक आन्दोलन को सफल बनाने के लिये जनता की धार्मिक भाव
को ख़ूब उभारा गया। विदेशी कपडे के ख़िलाफ प्रचार में एक ज़
दस्त दलील यह थी कि उसमें गाय और सुअर की चर्बी का उपय
होता है। इस आन्दोलन का प्रमुख मोर्चा था, विदेशी कपड़े
बायकाट। इसकी बदौलत देशी मिल मालिकों को बहुत लाभ हु
और इन लोगो ने भी आन्दोलन को सफल बनाने के लिये दिल खो
कर रुपया दिया। कांग्रेस के लिये तिलक स्वराज्य फण्ड में एक क
रुपये की माँग पूरी होने में कुछ भी समय न लगा।

साधन सम्पन्न और मध्यम श्रेणी के लिये स्वराज्य प्राप्त कर ले
महात्मा गांधी ने बहुत सरल समझा था; परन्तु उतना सरल वह
था। कल्पाना में तो यह बात सरल मालूम होती थी कि सरक
अमल को चलानेवाली मध्मम श्रेणी यदि अपना सहयोग न दे
पूँजीपति श्रेणी देश के शोषण में अंग्रेज़ो को सहायता न करे
अंग्रेजो की शासन व्यवस्था की इमारत तुरन्त गिर जायगी। व्यव
में यह बात उतनी आसान न थी, क्योंकि पूँजीपति और जमीं
श्रेणियो का अस्तित्व विदेशी शोषण के ढाँचे पर ही निर्भर करता
और मध्यम श्रेणी सरकारी व्यवस्था में सहयोग देकर निर्वाह कर
है। स्वराज्य के प्रति इतनी भक्ति उन्हें अपने स्वार्थों का बलिदान क
के लिये तैयार न कर सकी।

असयोग आन्दोलन की पुकार ने सार्वजनिक क्षेत्र में पहुँचकर राजनैतिक जागृति तो पैदा कर दी परन्तु जिस श्रेणी पर यह आंदोलन निर्भर करता था, उस श्रेणी के आगे न बढ़ सकने के कारण असहयोग इस मात्रा तक न हो सका कि सरकार बेकाम हो जाती। असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व बेशक साधन सम्पन्न और मध्यम श्रेणियाँ ही कर रही थीं परन्तु आन्दोलन को विराट रूप देने के लिये किसानों, मजदूरों तथा निम्न मध्यम श्रेणी को भी उसमें समेटा गया। इन श्रेणियो में पहुँचनेवाली जागृति केवल राष्ट्रीयता की भावुकता तक ही परिमित न रही।

विदेशी शासन में सबसे अधिक संकट इन लोगो पर ही है, इसलिये स्वतंत्रता की ज़रूरत भी सबसे अधिक इन्हें ही है। इन लोगों की परिस्थितियों का सुधार केवल ऊपरी शासन सम्बन्धी अधिकार भारतवासियों को मिल जाने से नहीं हो सकता। स्वराज्य मिलने की आशा से इन लोगो तक पहुँचने का प्रभाव यह हुआ कि यह लोग अपनी असह्य अवस्था दूर करने के लिये क्रान्तिकारी परिवर्तन करने को तैयार हो गये। पूँजीपति; ज़मीन्दार और मध्यम श्रेणी का अधिकारो की माँग से चला आन्दोलन सुधारों की माँग के बजाय व्यवस्था में क्रान्ति का यत्न करने लगा।

बीस वर्ष पूर्व भारत में औद्योगिक विकास कम हो पाया था इस लिये सगठित मज़दूर श्रेणी न बन पाई थी परन्तु इस श्रेणिका विकास और संगठन होने पर बम्बई, अहमदाबाद आदि में, जहाँ-जहाँ मजदूर थे, उन्होंने अपनी अवस्था में सुधार की माँग पेश की और उसके लिये हड़ताल का आश्रय लेना चाहा। मज़दूरों का यह काम महात्मा गांधी की राय में अनुचित ठहरा। महात्मा गांधी ने मज़दूरो को समझाया कि अपने सुधार के लिये उनका मालिको पर दबाव डालना हिसा और अन्याय है। उन्हें मालिको को 'पिता समान समझकर अपना धर्म पालन करना चाहिए।

था।' वह वही कुली थे, जिनके बारे में महात्मा गांधी लिखते है कि उनकी अवस्था मनुष्यत्व से गिरी हुइ थी। कुलियों के मनुष्यत्व का नाश होने से भी अधिक अत्याचार महात्मा गाधी को दिखाई दिया व्यापारियों की हालत पर, क्योंकि इन व्यापारियो की सम्पत्ति छीनी जा रही थी। इस विषय को स्पष्ट करने के लिये महात्मा गांधी लिखते है 'इन क़ानूनो से लाखो ही रुपये का कारोबार फैलाये हुए भारतीय व्यापारियों को भारत भेज दिया जा सकता था और उनका सब कारोबार बात की बात मे मिट्टी में मिल जाता...... ...।'

दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह चला व्यापारियों को हानि पहुँचाने-वाले कनूनों को रद्द कराने के लिये। आन्दोलन की ख़ूबी यह थी कि प्रचार किया गया कुलियों की दर्दनाक हालत का और सत्याग्रह किया गया व्यापारियो को नुकसान पहुँचानेवाले कानूनों के ख़िलाफ़, मज़दूरों की सत्याग्रही सेना बना कर। व्यापारियो के हितो की रक्षा के लिये मज़दूरों का उपयोग कामयाबी से कर सकने की अपनी नीति के बारे में महात्मा गाधी कहते हैं—'या तो दक्षिण अफ्रीका के व्यापारियों को यह ख़याल ही नहीं आया कि कुलियों की सहायता आन्दोलन चलाने में ली जा सकती है, या उन्हे भय था कि कुलियों को आन्दोलन में शामिल करने का परिणाम उनके हक़ मे उलटा न हो जाय। महात्माजी ने इसका उपाय ढूँढ़ निकाला। उन्होंने मज़दूरों को समझाया कि दक्षिण अफ्रीका ने किसी भी भारतीय का अपमान भारतीय-राष्ट्र का अपमान है। भारत की इज़्ज़त हमारे हाथों है (India's honour is in our keeping) इसलिये भारतीय व्यापारियों पर होनेवाले अन्याय के लिये तमाम भारतीयों को लड़ना चाहिए। सत्याग्रह शुरू हो गया। सत्याग्रह युद्ध में महात्मा गांधी ने स्त्रियों को आगे किया। स्त्रियो के गिरफ्तार होने से जोश में आ कुली शान्तिमय युद्ध मे सब कुछ कुर्बान करने को तैयार हो गये। कुलियों को यह

परवाह तो थी नहीं कि उन्हें कोई नुक़सान हो सकता है, उनका लाखो का कारोबार मिट्टी में मिल सकता है, वे सब कुछ करने के लिये तैयार हो गये। जो कुली अपने शरीर, प्राणो और मनुष्यत्व की रक्षा करने में असमर्थ थे, वे लखपतियों और व्यापारियो के सम्पत्ति कमाने के अधिकार की रक्षा करने के लिये आगे बढे। कहा जाता है, सत्याग्रह सफल हुआ। समझौता यह हुआ कि भारतीयो से सम्बन्ध रखनेवाले कानूनों का उपयोग "With due regard to vested rights"—(उनकी सम्पत्ति की रक्षा का उचित ध्यान रखकर) किया जायगा। कुली जैसे थे वैसे ही रह गये। गांधी-स्मट्स समझौते में जो बातें अफ्रीकन सरकार ने मानीं, वे सब शनैः शनैः भुला दी गईं। यह है सत्याग्रह की अपार शक्ति, जो महात्मा गांधी के विचार मे कभी असफल हो ही नहीं सकती। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो की अवस्था आज भी वैसी ही है। *

गांधीवाद के अनुसार मज़दूरो के लिये यही धर्म है कि वे अपनी शक्ति से सम्पत्तिशाली ठाकुर श्रेणी का मतलब पूरा करनेवाले आन्दोलन को सफल बनायें। किसान मज़दूरो का स्वयम् सचेत होकर, किसी बात को अपना अधिकार समझकर माँग करना अनुचित है। इससे हिंसा की भावना पैदा होती है इसीलिये जब कभी मज़दूरो ने अपनी माँगों पर सत्याग्रह किया, महात्मा गांधी का फ़तवा उनके विरुद्ध ही हुआ।

मज़दूरों के प्रति गांधीवाद का जैसा रुख़ है, वैसा ही किसानो के प्रति भी है। सन् १९२१ में जब किसानों ने अपनी दुरावस्था सुधारने के लिये लगान बन्दी की आवाज़ उठाई, महात्मा गांधी ने ज़मींदार श्रेणी के अधिकारो पर आनेवाली आँच को तुरंत भाँप लिया। १९

* दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का लेख 'दक्षिण अफ्रीका में अहिंसा का पहला प्रयोग' हंस, मार्च १९४१ में अनेक ज्ञातव्य और प्रामाणिक बातों के लिये उपयोगी होगा।

जनवरी के यङ्ग इण्डिया में उन्होंने अपना फतवा दिया—"I know that withholding of taxes is one of the quickest methods of overwhelming a Government" (मैं यह जानता हूँ, कर अदा न करना सरकार को बहुत जल्दी परास्त कर देने का एक सीधा उपाय है। वर्ष में स्वराज्य प्राप्त कर लेने की महान प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये इस हथियार का उपयोग न किया गया। वजह समझ पाना कुछ कठिन नहीं। किसानों की माँग थी कि कड़ी मेहनत से वह जो कुछ पैदा करते हैं, यह उनसे छीन न लिया जाय। स्वयं उनका भी पेट भरने के लिये उनकी मेहनत का पर्याप्त भाग उसके पास रहना चाहिये। इस माँग के लिये किसान लड़ना चाहते थे लगानबन्दी द्वारा।

किसान लगानबन्दी द्वारा निष्काम भाव से केवल सरकार को ही परेशान नही करना चाहते थे, इसमें उनके अपने पेट का भी सवाल था। यदि किसान लगान न अदा करने की अपनी शक्ति को पहचान जाते तो सरकार का तो जो कुछ बनता-बिगड़ता, परन्तु सरकार के पुरोहित जमींदार का क्या होता ? उन जमींदारो पर क्या बीतती जो सरकारी कर से दुगना, तिगना और चौगुना तक अपने पेट मे रख लेते है ? *

किसानो के मन मे पैदा हुई हिंसा को भाँपकर महात्मा गांधी ने तुरंत यङ्गइण्डिया द्वारा उपदेश दिया—"It is not contemplated that at any stage of Non-Co-operation we would seek to deprive the zamindars of their rent" (हमारा यह इरादा बिलकुल नही कि असहयोग आन्दोलन मे किसी भी अवसर पर ज़मींदार का लगान बन्द कर दिया जाय।"×)

* 'The Problem of India' by K S Shelvankar Page 39

× यङ्ग इण्डिया १८ मई १९२१।

ग़लतफहमी न रहने देने के लिये महात्मा गांधी ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया—"The Kisans must be advised scrupulously to abide by the terms of their agreement with the zamindars. whether such is writen or inferred from custom" (किसानों को समझा देना चाहिये कि ज़मींदारों से किये गये अपने समझौते का उन्हें धर्म पूर्वक पालन करना चाहिये, चाहे यह समझौता क़लमबन्द हो या रिवाज़ के अनुसार चला आया हो !) ज़मींदारों से किसानों के समझौते का अर्थ है, किसान जमींदारो की प्रजा बनकर रहें, उन्हें लगान अदा करते जायँ। किसानों की अपनी अवस्था चाहे जैसी भी रहे।

किसानो को जमींदारो की अत्याचार पूर्ण व्यवस्था के आगे सिर झुकाये चले जाने का उपदेश देने का साहस कोई दूसरा आदमी नहीं कर सकता, महात्मा गांधी कर सकते हैं, क्योकि वे अपने आपको किसानों का रक्षक और प्रतिनिधि कहते है, उनकी अवस्था पर आँसू बहाते हैं, उन्हीं की तरह जीवन व्यतीत करते है परन्तु इन सब बातों से किसानों को क्या लाभ होता है ? महात्मा गाधी को किसानों का रक्षक कहलाने का अधिकार इसलिये प्राप्त हुआ कि उन्होंने चम्पारन में किसानों की अवस्था सुधारी थी। चम्पारन में क्या हुआ ? यह श्री पट्टाभि सीतारमैया ने बडे करुणा पूर्ण शब्दो में काग्रेस के इतिहास में लिख दिया है। सम्पूर्ण वृत्तान्त का अभिप्राय यह है कि निलहे गोरे जमींदार किसानों पर बहुत ज़ुल्म ढाते थे। महात्मा गांधी ने उन ज़ुल्मों की लिस्ट बनाकर आन्दोलन चलाया। निलहे गोरे घबरा गये और अपनी-अपनी जायदादें बेचकर भाग खड़े हुए। सवाल उठता है कि निलहे गोरो द्वारा किये जानेवाले ज़ुल्मो मे कौन ऐसा ज़ुल्म था जिसे भारतीय ज़मींदार, जिन्हें महात्मा गाधी किसानों का 'पिता समान' और 'ट्रस्टी' बताते हैं, नहीं

करते ? * लेकिन यदि किसानों के आन्दोलन से भारतीय ठाकुर श्रेणी को चोट पहुँचाने का अवसर आये तो, अहिंसा की रक्षा के लिये आन्दोलन भले ही स्थगित करना पड़े, भले ही एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्ति की प्रतिज्ञा टूट जाय, पर इन्हें हानि नहीं होनी चाहिये।

गांधीवादी नीति के अनुसार स्वराज्य का उद्देश्य भारत से विदेशी शासन को हटाना है परन्तु यदि विदेशी सरकार को हटाने के उपाय की लपेट में भारत की पूँजीपति और जमींदार श्रेणियाँ आने लगें, तो वह उपाय हिंसात्मक यानि नीति विरुद्ध है। पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी का प्रभुत्व नष्ट होना भयंकर हिंसा है, इतनी भयकर कि उसके मुकाबिले में विदेशी सरकार के शासन से होनेवाली हिंसा भी बर्दाश्त की जा सकती है। तभी तो गाधीवाद कहता है कि भारत को ऐसे स्वराज्य की आवश्यकता नहीं जिसे प्राप्त करने में हिंसा हो।

सन् १९२० का सत्याग्रह आन्दोलन दो कारणो से समाप्त हुआ। एक कारण था, महात्मा गाधी के विचारानुसार जनता में हिंसा की भावना आ गई। जनता में हिंसा की भावना का प्रमाण मिला, मज़दूरों-किसानो के जोश में आकर अपनी माँगें पेश कर देने से और अहिंसा का अनुशासन न मान कर चौरी चौरा जैसे भयंकर काण्ड कर देने से। दूसरा कारण था, ऊँची श्रेणी के लोगो मे मौण्टेगू सुधारों में मिली कौन्सिलों में जाने की इच्छा। १९३५ के सुधारो की भांति आरम्भ में मौण्टेगू सुधारो को भी ठुकराया गया। कौन्सिलों में नाई, धोबी, चमार भेजकर मज़ाक उड़ाया गया। परन्तु दूसरे चुनाव का अवसर आने ही काग्रेस के बडे-बडे लीडर, स्वानामधन्य लाला लाज-

* श्री पट्टाभि सीतारमैया ने 'कागरेस का इतिहास' पृष्ठ २१३ पर चम्पारन में निलहे गोरो द्वारा किये जानेवाले जिन अत्याचारों का वर्णन किया है, भारतीय ज़मींदारों की प्रजा उन्हें नित्य ही अनुभव करती है।

पतराय, देशबन्धू दास और मोतीलाल नेहरू कौन्सिलों में जाने के लिये कॉंग्रेस को अपनी नीति में परिवर्तन करने के लिये मजबूर करने लगे। महात्मा गांधी को दोनों ही बातों से निराशा हुई। अहिंसा की रक्षा के लिये उन्होने आन्दोलन बन्द कर दिया और कौन्सिलो में जाने का भी उन्होंने विरोध किया। उन्होंने कहा कि असहयोग और कौन्सिल प्रवेश का मेल नहीं हो सकता।

महात्मा गांधी के विरोध करते रहने से क्या होता था ? ठाकुर श्रेणी के लिये अवसर था कि कौन्सिल में जाकर सरकार के साथ मिल क़ानून बनवाकर जितना लाभ उठाया जा सकता था, उठाया जाय। महात्मा गांधी के विरोध से यह श्रेणी अपने स्वार्थों को छोड नहीं सकती थी। गांधीवाद का जादू चलता है केवल अशिक्षित और साधनहीन श्रेणी पर, क्योकि यह अपने हित को पहचान नहीं सकती। निराश हो महात्मा गाधी नोचेंजर (अपरिवर्तनवादी) दल को ले, रूठ कर अलग हो गये*। हिंसा के दोषी होने के कारण आम जनता से महात्मा गांधी पहले ही रूठ चुके थे।

कौन्सिल प्रवेश के कारण होनेवाली महात्मा गांधी की नाराज़ी कुछ दिन में दूर हो गई और वे कौन्सिलों के कार्य मे सलाह मशविरा भी देने लगे। कौन्सिलों में जा कांग्रेसी नेता आपस में ही लड़ने लगे और उनके कई दल बन गये; स्वराजिस्ट, नेशनल-स्वराजिस्ट और जाने क्या-क्या ? कांग्रेसी नेताओं के अलग-अलग दलों मे बॅट जाने का कारण भी उनके स्वार्थ थे। किसी ने साम्प्रदायिक स्वार्थ को महत्व दिया, कुछ ने वैयक्तिक रूप से महत्वकांक्षा पूर्ण करने की ओर और कुछ ने राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी श्रेणी के हितों की फिक्र की।

सन् १९२७ का कांग्रेस का यह आन्दोलन मध्यम श्रेणी से उठकर

---

* उससमय श्री राजगोपालाचार्य भी कौन्सिल विरोधी थे। वाद में मिनिस्टर भी वन गये।

स्वाभाविक रूप से आम जनता में जा रहा था। इसका स्वाभाविक क्रम होना चाहिये था—आम जनता का स्वराज्य के मोर्चे पर आकर शासन के अधिकार को पाना। परन्तु इसमें हिंसा का भय देख गांधीवादी राजनीति ने उसे रोक दिया। परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन सम्पत्ति शाली और मध्यम श्रेणी के मनभाये खेल, कौन्सिलों की पैंतराबाजी में बिखर गया। एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करने की महान प्रतिज्ञा का अन्त हुआ कौन्सिलों के मरघट में जाकर।

(२)

सन् १९२८ में ब्रिटिश सरकार ने भारत के शासन विधान में सुधार की तजवीज़ो पर विचार करने के लिये साइमन कमीशन भारत भेजा। भारत के सभी राजनैतिक दलों ने इस कमीशन का विरोध किया, कांग्रेस ने किया असहयोग। कांग्रेस को एतराज था कि कमीशन में भारतीयों को नहीं रखा गया। अर्थात् भारतवासियों को शासन विधान बनाने में सहयोग का अवसर क्यो नहीं दिया गया। कमीशन के बायकाट ने सार्वजनिक आन्दोलन का रूप ले लिया। सरकार ने दमन आरम्भ किया। उससे देश में पुन. जागृति और विद्रोह की भावना उठ खड़ी हुई। राजनैतिक प्रवाह उमड़ता देख कांग्रेस का नियन्त्रण करनेवाला दल महात्मा गांधी को नेता बना कर देश का राजनैतिक संचालन करने के लिये फिर आगे बढ़ा। सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन का आरम्भ हुआ लाहोर कांग्रेस के अधिवेशन से।

सन् १९२० में जब स्वराज्य का आन्दोलन आरम्भ हुआ उस समय महात्माजी ही सबसे अधिक उग्र राजनैतिक कार्य-क्रम लेकर आये थे। १९२० से १९३० तक के समय में देश की राजनैतिक स्थिति का अनुभव प्राप्त कर काफ़ी संख्या ऐसे लोगों की पैदा हो गई जो गांधीवादी नीति के राजनैतिक कार्य-क्रम में शिथिलता अनुभव करने लगे। इन लोगो ने कौंसिल प्रवेश के समय १९२४ में भी विरोध किया था।

यह लोग स्वराज्य के आन्दोलन को देश की आम जनता तक पहुँचाने के लिये उसमें मज़दूरो तथा किसानों की माँगें शामिल करना चाहते थे। सन् १६२० के आन्दोलन के बाद कांग्रेस का नियन्त्रण करनेवाली श्रेणी ने इन लोगों की परवाह न की परन्तु सन् १६३० मे जब आन्दोलन के लिये आम जनता की शक्ति की ज़रूरत हुई, इन लोगो को समेटने का आयोजन किया गया।

भारत की जनता की राजनैतिक भावना को समझने के लिये उसे कई भागो में बाँटा जा सकता है। राजाओं, महाराजाओ, नवाबों की चर्चा करने की ज़रूरत नहीं; वे आम जनता के अंग नहीं। उनका अस्तित्व ब्रिटिश सरकार की मंज़ूरी और इच्छा से ही है। भारत की राष्ट्रीयता या स्वराज्य प्राप्ति से उन्हें अब तक विरोध के सिवा मतलब नहीं रहा। इसके बाद नम्बर आता है ज़मीन्दारों का बडे-बडे पूँजीपतियों का, जिनकी बडी-बड़ी मिलें चलती हैं, या जो विदेशी व्यापारियों के मुक़ाबिले में इस देश में कारोबार चलाते हैं। इन लोगो का लाभ इसी बात में है कि शासन विधान अपने निर्णय से बनाने का इन्हें अवसर रहे। ब्रिटिश सरकार विदेशी कारोबारियों को इस प्रकार की सुविधायें देती है जिनसे वे व्यापार और कारोबार द्वारा इस देश का गहरा शोषण कर सकते हैं। ऐसी सुविधायें देशी पूँजीपतियों को नहीं है। विदेशी पूँजीपतियो के मुक़ाबिले में वे कम लाभ उठा पाते हैं। देशी ज़मींदारो को भी अपनी रैयत के शोषण से समेटे धन का एक भाग सरकार के हाथ सौंपना पडता है। अपने शोषण के अधिकार को मन चाहे ढंग से बढ़ाने के लिये इन लोगो को शासन के अधिकार अपने हाथ में लेने की ज़रूरत है। पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी की छाया में रहकर मज़दूरो तथा किसानों का शोषण करने में उन्हें सहायता दे अपना निर्वाह करनेवाली मध्यम श्रेणी है। दूसरी श्रेणी है शोषित वर्ग की, जिसमें मज़दूर, किसान, छोटे-छोटे चलतू रोज़गार

करनेवाले और साधारण निम्न श्रेणी के नौकरी पेशा लोग हैं। इनकी मेहनत की पैदावार पर ही पूँजीपति ज़मींदार और उनकी सहायक श्रेणी फूलती फलती है।

काग्रेस का नेतृत्व सदा से पूँजीपति श्रेणी के इशारो पर चलनेवाली मध्यम श्रेणी के ऊँचे दर्जे के लोगों के हाथ मे रहा है। कांग्रेस की साधारण जनता मे निम्न मध्यम श्रेणी और शोषित श्रेणी के कुछ बेहतर अवस्था में रहनेवाले शिक्षित समुदाय के लोग हैं। प्रचार की सहायता से राष्ट्रीयता के नाम पर काग्रेस आम जनता या शोषित वर्ग का समर्थन और सहायता प्राप्त कर विदेशी सरकार पर ज़ोर तो अवश्य डालती आई है परन्तु काग्रेस की नीति निश्चित करने में इस श्रेणी का कभी अधिकार नहीं रहा। कांग्रेस को खुल्लमखुल्ला पूँजीपति श्रेणी के हित साधन का हथियार बनते देख समय-समय पर यह श्रेणी असतोष भी प्रकट करती रही है।

पूँजीपति और मालिक श्रेणी के हितों पर आँच आती देख १९२० से स्वराज्य के लिये आरम्भ किया गया आन्दोलन स्थगित हो गया। आन्दोलन के लिये किये त्याग का कुछ फल निकलता न देख देश की निम्न मध्यम श्रेणी तथा शोषित वर्ग के शिक्षित लोगों में गांधीवादी कांग्रेस की नीति के प्रति असंतोष फैलने लगा। उस समय महात्मा गांधी को देश की गरीब जनता का प्रतिनिधि बताकर कांग्रेस के मालिकों ने उनके फर्मानो और फ़तवों से इस श्रेणी को चुप करा दिया।

गांधीवाद का उपदेश और परिणाम परस्पर भिन्न-भिन्न है। यों तो गांधीवाद दरिद्रनारायण की पूजा करता है और धन दौलत इकट्ठा करना पाप बताता है परन्तु गांधीवाद की सहायता धनी और दौलतमन्द श्रेणी ही करती है। इस श्रेणी के प्रतिनिधि महात्मा गांधी को काग्रेस का डिक्टेटर बनाकर स्वयं उनके चेले बन जाते है परन्तु ऐसा भी समय

आता है कि वे गांधीवाद के सिद्धान्तो को आम जनता के लिये अव्यवहारिक बताकर सत्य और अहिंसा के प्रयोगों को व्यक्तिगत रूप से करने की छुट्टी महात्मा गांधी को दे देते है। जिसका अर्थ होता है, महात्मा गांधी को कांग्रेस से अलग कर देना। जब गांधीवाद के सत्य अहिंसा के जुये में जनता का फँसाकर यह श्रेणी अपने स्वार्थों की गाडी खिचवा सकती है तब गांधीवाद में इतनी गहरी श्रद्धा प्रकट की जाती है कि सत्य और अहिंसा के नाम पर आम जनता के हितो या राष्ट्र के हितों को भी क़ुर्बान कर देने मे इसे सकोच नहीं होता है। गांधीवाद से स्वार्थ तो इस श्रेणी के पूर्ण होते हैं परन्तु डोण्डी यह पीटी जाती है कि गांधीवाद दरिद्र नारायण की पूजा करता है, वह सात पैसा रोज़ कमानेवाली और सात लाख गाँवों में बसनेवाली अशिक्षित जनता का रक्षक है। जब किसान, मजदूर श्रेणी के लोग अपनी अवस्था से असंतोष अनुभव करने लगते हैं तो उन्हे समझाया जाता है कि उनके कल्याण और मुक्ति का उपाय श्रेणी के रूप मे संघर्ष द्वारा अधिकार प्राप्त करने से नहीं, बल्कि गांधीवाद की सीख मानकर त्याग और संतोष मे हैं।

शोषित श्रेणी के शिक्षित लोग और मध्यम श्रेणी के वे लोग जो विश्वास की अपेक्षा तर्क का आश्रय लेते है, जो व्यक्तिगत तथा श्रेणी स्वार्थों की अपेक्षा समाज के हित को महत्व देते है, इस अवस्था में असंतोष की आवाज उठाये बिना नही रह सकते। आन्दोलन के क्षेत्र में ऐसे लोगो की शक्ति का बहुत महत्व होता है। धन दौलत के साधन इन लोगो के पास न होने पर भी अपने कार्यक्रम को जनता के सामने रख वे उसका सहयोग और शक्ति पा सकते हैं। जहाँ तक सम्भव होता है, पूँजीपति श्रेणी ऐसे लोगों को राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी ओर घसीटे रहती है। सन् १९२९-३० मे साइमन कमीशन का बायकाट करने और आन्दोलन चलाकर शासन के अधिकारो को हथियाने के लिये सरकार पर ज़ोर डालना ज़रूरी था। उसके लिये उग्र लोगो को

भी कांग्रेस के मोर्चे पर लाने की ज़रूरत हुई । कांग्रेस में इस विचार के लोगो के प्रतिनिधि पं० जवाहरलाल नेहरू को समझकर उन्हें लाहौर काग्रेस का प्रधान चुना गया । प० नेहरू को प्रधान तो नियत किया गया महात्मा गाधी की स्वीकृति से। प्रधान नेहरू हुए परन्तु आन्दोलन को चलाने का एक मात्र अधिकार महात्मा गांधी को ही दिया गया।

लाहौर कांग्रेस में आन्दोलन का डिक्टेटर म० गांधी का चुना जाना एक विचित्र समस्या थी । आज जनता या तो महात्मा गाधी की सत्य अहिंसा की नीति को समझ न सकी या यह नीति उन्हें स्वीकार न थी, लाहौर कांग्रेस मे म० गाधी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि काग्रेस के कार्यक्रम में शान्तिमय और वैद्य उपायों Peaceful and Legitimate means) के स्थान पर सत्य और अहिंसा के उपाय (truthful and non-violent means) शब्द रक्खे जाँय। महात्मा गांधीं का अभिप्राय था, काग्रेस अहिंसा को नीति के रूप में न मानकर उद्देश्य समझे। बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार न हो सका। सन् १९३४ में बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन मे भी महात्मा गाधी ने फिर इस बात पर ज़ोर दिया कि काग्रेस अपने कार्यक्रम में वैध तथा शान्ति पूर्ण उपाय के स्थान पर सत्य और अहिंसा के उपाय शामिल करे परन्तु यह प्रस्ताव दूसरी दफ़े फिर गिर गया। यद्यपि काग्रेस ने बहुमत से महात्मा गांधी की नीति के मूल तत्व को अस्वीकार कर दिया परन्तु फिर भी वे कांग्रेस के सर्वेसर्वा बने रहे क्योकि काग्रेस उनके बिना चल नहीं सकती।

कांग्रेस के बहुमत का विश्वास गांधीवाद में न होते हुए भी कांग्रेस महात्मा गाधी या गांधीवाद को क्यो नहीं छोड़ सकती ? इस समस्या का उत्तर कांग्रेस की नेताशाही संक्षेप में दे चुकी है। वे कई दफ़े अपने व्यवहार और शब्दो से प्रकट कर चुके है कि महात्मा गाधी ही कांग्रेस है। इस वात को स्वीकार करने में कांग्रेस के सर्व साधारण

मेम्बर अभिमान अनुभव नहीं करते। यह बात कांग्रेस के वे ही नेता गर्व पूर्वक कह सकते हैं, जिन्हें इस बात का विश्वास है कि महात्मा गांधी और गांधीवाद उनके हाथ की कठपुतली हे।

कांग्रेस को अपनी नीति और कार्यक्रम पर विश्वास न दिला सकने पर गांधीवाद कांग्रेस पर शासन कर सकता है क्योंकि कांग्रेस को क़ायम रखने और चलाने के लिये जिन साधनों की ज़रूरत है, उन साधनो के मालिकों का उद्देश्य गांधीवाद से पूरा होता है। कांग्रेस के पचास लाख मेम्बर मिलकर जितने साधन मुहय्या नहीं कर सकते उतने साधन कांग्रेस का नियंत्रण करनेवाले पाँच पूँजीपति जमा कर सकते है। कांग्रेस का काम और विधान जिस पूँजीपति ढंग से चलता है, उसमें बजट ही प्रधान शक्ति और केन्द्र हैं। काग्रेस में उग्रनीति के समर्थक, कम्युनिस्ट, कांग्रेस-समाजवादी आदि लोग तर्क की दृष्टि से गांधीवाद से असतुष्ट रहने पर भी यह बात स्वीकार करने के लिये मजबूर हैं कि महात्मा गांधी के बिना कांग्रेस नहीं चल सकती। महात्मा गांधी के अलग हटते ही कांग्रेस के पैरो तले से साधनों की जमीन खिसक जायगी। वास्तव में कांग्रेस और कांग्रेस-जन महात्मा गांधी के ग़ुलाम नहीं। वे उस श्रेणी के ग़ुलाम हैं, जो सब साधनो की मालिक है।

सन् १९२० के आन्दोलन के बाद ठाकुर श्रेणियो ने गाधीवादी सत्याग्रह और असहयोग को तिलांजली दे दी थी। मौको आने पर उन्होंने उसे फिर से अपना लिया। १९३० में नये शासश विधान की नींव रखी जाने के समय ब्रिटिश सरकार को भारत की पूँजीपति श्रेणी का बल और प्रभाव राष्ट्रीय माँग के रूप मे दिखाना जरुरी थी। स्वराज्य के लिये सत्याग्रह युद्ध फिर चला। इस दफ़े भी पहले का सा ही हाल था। स्वराज्य की कोई निश्चित रूप-रेखा तैयार किये बिना स्वराज्य की पुकार उठाई गई और भारत की स्वतंत्रता का सार नमक क़ानून तोड़ने में समझकर कार्य-क्रम चला। सन् १९२० के

आन्दोलन और सन् १९३० के आन्दोलन में एक अन्तर था। पहले आन्दोलन में राष्ट्रीयता पर ज़ोर था। दूसरे आन्दोलन में गांधीयता अधिक भरी जाने लगी।

नमक क़ानून तोड़ना सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन का मुख्य शस्त्र था। राजनैतिक अपराध की दृष्टि से नमक क़ानून तोड़ने का परिणाम वही था जो किसी भी क़ानून को तोड़ने का हो सकता है परन्तु कानून तोड़ने वालों के लाभ की दृष्टि से यह परिणाम कुछ भी न था। नमक क़ानून के कष्टों के कारण भारत की प्रजा त्राहि-त्राहि नहीं पुकार रही थी। भारत की प्रजा के पेट पर पत्थर तो रखा जा रहा था भारी लगान, कम मज़दूरी और बेरोजगारी के कारण परन्तु तोड़ा गया नमक क़ानून ! कहा जायगा कि यह एक राजनैतिक व्यायाम था जो आगे आनेवाले भारी संघर्ष की तैयारी के लिये किया गया लेकिन वह जारी राजनैतिक संघर्ष तो कभी सामने आया नहीं। जिस रूप से राजनैतिक संघर्ष आरम्भ किया गया था, उसमें संघर्ष के आगे बढ़ने की गुंजाइश भी न थी। साधारण बुद्धि का व्यक्ति यही समझेगा कि गैर क़ानूनी नमक की पुड़िया तैयार करने में जो क़ुरबानी की गई, उसे किसी ठोस प्रश्न पर किया जाता तो देश की राजनैतिक जागृति और प्रगति उससे कहीं आगे तक होती जहाँ कि वह आज है। लेकिन सत्याग्रह के लिये किसी भी ऐसी माँग को आगे रखने से, जिससे शोषितों में आत्मनिर्णय की भावना आती भारत की मालिक या ठाकुर श्रेणी के स्वार्थ को आँच आ सकती थी।

स्वराज्य के लिये सत्याग्रह आरम्भ करने पर सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों को एक ओर रखकर नमक कानून तोड़ने की फूलछड़ी से सरकार से लड़ाई लड़ी गई। प्रयोजन मौजूदा व्यवस्था को पलटकर नई व्यवस्था कायम करना नहीं, सरकार को धौंस देना था। यह दूसरी बात है कि सरकार ने इस मज़ाक की नज़ाकत समझने की कोशिश न कर

अपना अधिकार और आतंक क़ायम रखने के लिये इस आन्दोलन को लाठी, घोड़ों के नाल और गोलियों की बौछार से दबा दिया। जो भी हो, महात्मा गांधी और गांधीवाद की राजनैतिक बुद्धि को इतना बोदा नहीं समझा जा सकता कि शासन विधान मे क्रान्ति करने के लिये नमक की पुड़िया को ही वे सब कुछ समझ बैठते। नमक सत्याग्रह के लिये कोई ऐसा हथियार चुना जाय जो देश की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में विघ्न डाले बिना विदेशी सरकार को भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति समझा दे। सरकार भारत की राष्ट्रीय भावना से डरकर देश की उस श्रेणी से समझौता करने के लिये घुटने टिका दे जो इस राष्ट्रीय आन्दोलन की आँधी को खड़ा कर सकती है।

पूँजीपति श्रेणी या इस श्रेणी का कारिन्दा गांधीवाद राष्ट्रीय आन्दोलन तो चाहता था परन्तु उसे 'हिंसा' से भय था। हिंसा से भय का अर्थ यह नहीं था कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन करनेवालों को चोट न आये। इस बात की परवाह न थी। आन्दोलन आरम्भ करते समय ही महात्मा गांधी ने कह दिया था कि सरकार की जेलों के दरवाज़ों पर वे सत्याग्रहियों की हड्डियो के पहाड़ लगा देंगे। हिंसा का अर्थ यह भी नहीं था कि अंग्रेज़ों के हाथ से इस देश का शासन और शोषण का अधिकार छीनने से उनका दिल न दुखे। हिंसा का अभिप्राय था कि राष्ट्रीय आन्दोलन इस प्रकार का रूप धारण न कर ले कि देश की सम्पत्ति की मालिक ठाकुर श्रेणियो की स्थिति और उनके अधिकार ख़तरे में पड जायँ।

जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह का उद्देश्य लाहौर कांग्रेस में भारत की जनता के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति बताया गया। स्वतंत्रता का सबसे पहला अर्थ है, जीवित रहने का अधिकार ! यदि जनता की स्वतंत्रता का अर्थ उनके लिये जीवन निर्वाह के साधनो को

विश्वास था परन्तु यह सब मिट चुका है (Gone to dogs)। मैं समझ गया हूँ कि सरकार इन तरीक़ों से नहीं समझ सकती। राजद्रोह अब मेरा धर्म हो गया है—हमारा यह धार्मिक कर्तव्य हो गया है कि हम इस सरकार के अभिशाप (This Curse of Goverment) को मिटा दें *।

इस एलान को पढ़ने के बाद जान पड़ता है कि महात्मा गांधी सरकार के हृदय परिवर्तन की आशा छोड़ चुके थे परन्तु गोलमेज़ कान-फ्रेन्स में पहुँचकर उनका विचार फिर बदल गया। इँगलैण्ड में महात्मा गांधी का एलान दूसरा ही था। वहाँ आपने फर्माया—"हम ब्रिटेन के हृदय में भारत के लिये प्रेम उत्पन्न करना है। यदि ब्रिटेन की जनता समझती है कि हमें इस कार्य में सौ वर्ष लग जायँगे, तो कांग्रेस सौ वर्ष तक अग्नि परीक्षा में तपती रहेगी। ×

भारत की साधारण जनता को यह बात तर्क संगत नहीं जान पड़ेगी परन्तु महात्मा गांधी के समर्थक तर्क की परवाह करते भी नहीं। उनका दावा है कि महात्मा गाधी आंतरिक प्रेरणा (Intution) के अनुसार चलते हैं। ब्रिटेन को यह विश्वास दिलाने में कि वे ब्रिटेन को भारत से प्रेम कराये बिना न मानेंगे और सौ वर्ष तक इसके लिये तपस्या करने को तैयार है महात्मा गांधी का मतलब केवल यही समझा जा सकता है, कि वास्तव में ही वे सौ वर्ष तक भी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते जिससे ब्रिटेन द्वारा भारत में जारी की गई व्यवस्था में उथल-पुथल हो। ऐसा करना वे उचित भी नहीं समझते। उनके विचार में भारत और ब्रिटेन के हित एक है। किसी न किसी दिन ब्रिटेन इस बात को समझेगा ही। कांग्रेस को गांधीवादी नीति की यह प्रेरणा

* 'काग्रेस का इतिहास' पट्टाभि सीता रमैय्या पृ० - ५१

×'काग्रेस का इतिहास' पृष्ठ ८३५।

वास्तव में ही उस श्रेणी के स्वार्थों की प्रतिध्वनि है जिनके हितों की रक्षा करना गांधीवाद की दृष्टि में सत्य धर्म और अहिंसा है। *

ब्रिटेन की शासक श्रेणियो और भारत के हितों में कुछ भेद है, इसीसे दोनों में विरोध दिखाई देता है। ऊपर हम कह आये हैं, भारत का मनुष्य समाज श्रेणियों मे बॅटा हुआ है। ब्रिटिश साम्राज्य से भारत का शोषक और शोषित का सम्बन्ध है। यों तो सम्पूर्ण भारत शोषित है परन्तु इस शोषण में भारत की भिन्न-भिन्न श्रेणियों का स्थान अलग-अलग है। किसान, मज़दूर या परिश्रम करनेवाली आम जनता तो भोजन के पदार्थ की भॉति है और पूॅजीपति तथा ज़मींदार श्रेणी रसोइये के स्थान पर है। यह श्रेणी विदेशी साम्राज्य के लिये शोषण का साधन बनती है और स्वयम् भी शोषण करती है। आम जनता स्वराज्य चाहती है इस-

* कांग्रेस का नियंत्रण करनेवाला दल भारत के स्वराज्य की समस्या को किस प्रकार हल करना चाहता है, इसका कुछ अनुमान १९३१ की गोलमेज कानफ्रेन्स में दिये गये श्री घनश्यामदास बिड़ला के भाषण से किया जा सकता है—"... ...अगर अमनचैन कायम रखना है तो यह ज़रूरी है कि या तो आप हमारी मर्ज़ी से हम पर हुकूमत करे या हमको अपने ऊपर स्वयम हुकूमत करने दें। इस अवस्था में हम आपके दोस्त और साझीदार हो सकते हैं। अगर इस मौक़े पर आपने हमसे कोई दोस्ताना समझौता न किया तो यह आपकी भयङ्कर भूल होगी। मैं अपने मुल्क के नौजवानों को अच्छी तरह जानता हूॅ। बहुत सम्भव है कि कुछ वर्ष बाद इंगलैण्ड को महात्मा गांधी, भारतीय नरेशों या मुझ जैसे पूॅजीपतियों से समझौता न करके बिलकुल नये आदमियों से, नयी अवस्थाओं से, नये विचारों से, नयी आकांक्षाओं से निबटना पड़े। इंगलैण्ड को सावधान हो जाना चाहिये।" ...श्री घनश्यामदास बिड़ला की पुस्तक 'डायरी के कुछ पन्ने' की भूमिका पृ० ६। भूमिका लेखक, श्री० बिड़ला के सेक्रेटरी।

लिये कि शोषण बिलकुल समाप्त हो जाय। पूँजीपति और जमींदार श्रेणी चाहती है शोषण की मौजूदा व्यवस्था कायम रहे और ब्रिटेन द्वारा किये जानेवाले शोषण का भाग भी उन्हीं को मिले। यदि शोषण की व्यवस्था ही समाप्त हो जाय तो इस श्रेणी का अस्तित्व भी नहीं रहता। इस श्रेणी का हित इस प्रकार के स्वराज्य में ही है जिससे व्यवस्था में परिवर्तन हुए बिना शासन के काम में इन्हें अंग्रेज़ों के समान अधिकार हो। गांधीवादी प्रेरणा के अनुसार स्वराज्य को पुरानी व्यवस्था में ही सीमित रखने के लिये अहिंसा की हदबन्दी की जाती है। जब भी जन आन्दोलन का रुख़ पुरानी व्यवस्था को तोड़ने के लिये पूंजीपति और जमींदार श्रेणी के हाथ से शक्ति ले लेने की ओर जाने लगता है, आन्दोलन रोक दिया जाता है। इस व्यवस्था को क़ायम रखते हुए स्वराज्य लेने का तरीक़ा यही है कि अँग्रेज़ों की शासक श्रेणी का हृदय परिवर्तन हो, वे भारत की पूंजीपति और ज़मींदार श्रेणी और अपने हितों को एक समझें, देश के शोषण में भारत की पूंजीपति जनता के अधिकार को स्वीकार करें। इसके लिये गांधीवादी नीति सौ वर्ष तक तपस्या करने को तैयार है।

गांधीवादी नीति को यदि कभी ब्रिटिश सरकार से सुविधा मिलने के वायदे पर संदेह होने लगता है, तब वह भी पूँजीपतियों के दृष्टि-कोण से ही। गोलमेज़ कान्फ्रेंस के अवसर पर वायसराय के एलान से खीझकर महात्मा गांधी ने कहा था—"वायसराय तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के लिये उस समय तक प्रतीक्षा करते रहना चाहते हैं जब तक कि भारत का प्रत्येक लखपति सात पैसे कमानेवाले मजदूर की स्थिति को पहुँच जाय।" × लखपति भी सात पैसे कमानेवाला मज़दूर बन जायगा, यही भय गांधीवादी कांग्रेस को

× कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ६१६।

है मज़दूर और किसान का क्या हो रहा है, इस ओर उसका ध्यान नहीं जाता।

जिस समय अंग्रेज़ों का हृदय परिवर्तन करने के लिये सौ वर्ष तक तपस्या करने का एलान महात्मा गांधी इंगलैण्ड में कर रहे थे, भारत मंत्री सर होर ने उन्हें इस तपस्या की निरर्थकता समझा दी। उन्होने महात्मा गांधी को समझाया कि भारत में अंग्रेज़ जो कुछ कर रहे हैं अपने विचार और धारणा के अनुसार न्याय कर रहे हैं। इधर भारत सरकार के हृदय ने भी करवट बदल ली। इगलैण्ड मे महात्मा गांधी की रसाई राजमहल तक हो सकी थी। भारत में बादशाह सलामत के कारिन्दे वायसराय बहादुर ने ही उनसे मुलाक़ात करने से इनकार कर दिया। फिर से सत्याग्रह का युद्ध छेड़ने का एलान हुआ परन्तु सरकार दाँव पर तैयार थी। कांग्रेसी नेताओं को, मय महात्मा गाधी के, जेलों में बन्द कर दिया गया। महात्मा गांधी को जेल मे बन्द कर देने से आन्दोलन गाधीवादी सत्य और अहिंसा की सीमाओं से बिखर कर बहने लगा। आन्दोलन का ज़ोर नमक की अपेक्षा लगान बन्दी की ओर होने लगा। काग्रेस जन अपने आपको जेल पहुंचाकर जीवन धन्य करने की अपेक्षा, जैसे भी बन पड़ा, सरकारी व्यवस्था में अड़चन डालने का यत्न करने लगे। कई जगह जनता इससे भी आगे बढ़ गई और वे तार काट देने तथा विद्रोह के दूसरे कामो से असंतोष प्रकट करने लगीं। यहाँ तक कि दिल्ली मे सन् १९३२ का कांग्रेस अधिवेशन गुप्त रूप में गोरिला ढंग से किया गया।

यह उपाय उचित है या अनुचित, इस बात का चर्चा न कर यहाँ यही देखना है कि महात्मा गांधी का नेतृत्व जनता पर से हटते ही आन्दोलन सार्वजनिक रूप धारण करने लगता हे और म० गांधी की उपस्थिति आन्दोलन को महात्माजी के सिद्धान्तों की सीमा मे समेटे रहती है। महात्मा गांधी ने अनेक अवसरो पर अंग्रेज़ो को यह चेतावनी

दी हैं कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को मासूम (Harmless) बनाये रहने का श्रेय उन्हीं को है। यदि सरकार उनकी बात को नहीं सुनती तो भय है कि भारत की प्रजा वैधानिकता का लिहाज़ छोड़कर आन्दोलन को घातक रूप दे देगी। *

सन् १६३२ में आरम्भ होनेवाले आन्दोलन का अन्त भी विचित्र ढग से हुआ। सत्याग्रह चल रहा था इस प्रश्न पर कि भारत के लिये शासन विधान बनाने का अधिकार अंग्रेज़ों को नहीं, भारतवासियों को हैं। कांग्रेस अंग्रेज़ो के बनाये शासन विधान को कभी मजूर नहीं करेगी। ज़ाहिरा यह कहते रहने पर भी गांधीवादी काग्रेस उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी कि विधान बनता कैसा है ? विधान में अछूतों के वोट अलग होते देख हिन्दू सम्पत्तिशाली श्रेणी के हित को चोट पहुँचने की सम्भावना से महात्मा गाधी घबरा उठे और अनशन कर बैठे। सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था अंग्रेजों द्वारा तैयार किये जानेवाले शासन विधान को अस्वीकार करने के लिये। अनशन किया गया इसी विधान मे सुधार करने के लिये। यदि शासन विधान को स्वीकार न करने की बात सच्चे हृदय से कही जा रही थी तो उसमें सुधार कराने का प्रश्न उठ ही नहीं सकता था। अछूतो के वोट अलग किये जाने के विरोध में महात्मा गाधी ने आमरण उपवास किया था, यह उपवास छठे दिन बन्द हो गया। आम जनता ने यह समझा कि ब्रिटिश सरकार महात्मा गाधी की आध्यात्मिक शक्ति और महात्याग से प्रभावित हो गई परन्तु बात यह थी कि सरकार बाल भर भी न हिली। हाँ, हिन्दू पूँजीपतियों के प्रतिनिधियों के प्रयत्न से अछूतों के लिये शासन विधान में दी गई रियायतों से दूनी रियातें देने का वायदा कर दिया गया। कहने को ब्रिटिश सरकार का निश्चय बदल गया परन्तु शासन विधान की त्रुटि इससे दूर नहीं हुई, दूनी हो गई।

* 'काग्रेस का इतिहास' पृ० ६१६

कांग्रेस आन्दोलन को इस उपवास से क्या लाभ हुआ ? परम गांधीवादी श्री पट्टाभि सीतारमैया को भी स्वीकार करना पड़ा कि महात्मा गांधी ने अछूतों की समस्या की ओर ही जनता का ध्यान आकर्षित कर लिया इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को हानि हुई १ ।

सन् १९३२ के सत्याग्रह आन्दोलन का क्रम कुछ विचित्र-सा रहा । महात्मा गांधी तो सन् १९३१ में सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर अंग्रेज़ों का हृदय परिवर्तन करने के लिये गोलमेज कान्फ्रेंस में चले गये । उनके पीछे कुछ तो नौकरशाही का दमन जारी रहने के कारण और कुछ स्वतंत्रता और अधिकार प्राप्त करने की भावना आम जनता तक पहुँच जाने के कारण आन्दोलन की धूनी सुलगती ही रही । महात्मा गांधी गोलमेज़ कान्फ्रेंस से असंतुष्ट होकर आ रहे थे । उनका विचार तो शायद आते ही आन्दोलन आरम्भ करने का नहीं था- हालाँ कि इंगलैण्ड में वे अपने बयानो में यही कहते रहे कि वे लौटकर सत्याग्रह शुरू करेंगे २ । लौटकर लार्ड विलिंगन्डन को तार दे समझौता बनाये रखने की इच्छा भी उन्होंने प्रकट की ३ । ब्रिटिश सरकार शत्रु को अवसर देने की नीति में विश्वास नहीं करती । महात्मा गांधी की बात दूसरी है, अपने विरोधी के आराम का ख़्याल कर वे स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलन में भी रविवार और प्रत्येक सरकारी छुट्टी के दिन सत्याग्रह बन्द कर देते हैं । साहब के शिकार में विघ्न नहीं पड़ना चाहिये, स्वराज्य भले ही एक दिन देर से सही । अस्तु, समझौते की इच्छा प्रकट करने पर भी सरकार ने आर्डिनेन्स जारी कर महात्मा गांधी तथा उनके दल बल को गिरफ़्तार कर जेलों में पहुँचा दिया । आन्दोलन आरम्भ तो गांधीवादी नीति पर ही हुआ था परन्तु उसका संचालन और देख रेख

१ 'कांग्रेस का इतिहास' पृ० ५६५ । २ महात्मा गांधी की मि० चर्चिल के पुत्र से मुलाकात, 'डायरी के कुछ पन्ने' पृष्ठ ५० । ३ 'कांगरेस का इतिहास, पृष्ठ० ५२६ ।

का काम महात्मा गाधी न कर सके इसलिये वह चोटी के लीडरों के बिना ही देश भर में फैल गया। यह जानते हुए भी कि किसान वास्तव में ही लगान अदा नहीं कर सकते, गांधीवादी नीति नहीं चाहती थी कि आन्दोलन लगान बन्दी का रूप ले परन्तु जनता इसी बात पर ज़ोर दे रही थी। आखिर बहुत मजबूर होकर, बेबसी की हालत में काग्रेस को सरकार से समझौता हो जाने तक के समय के लिये लगान मुल्तवी की इजाज़त देनी पडी *।

आन्दोलन ने उग्ररूप धारण कर लिया यहाँ तक कि लगभग नब्बे हज़ार व्यक्ति जेल पहुँच गये। ऊपर बताई गई परिस्थित से स्पष्ट है कि इस आन्दोलन के बारे में गांधीवादी नेता और जनता की राय न थी। महात्मा गाधी जेल में बन्द होने के कारण आन्दोलन पर नियन्त्रण नहीं रख सकते थे। ऐसी अवस्था में सन् १९३२ सितम्बर में उन्होंने अछूतों की वोटों के प्रश्न पर अनशन कर दिया। अनशन का प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन पर जो पडा वह हम ऊपर बता आये है, अर्थात् आन्दोलन में शिथिलता आ गई। उपवास आरम्भ करने से पहले महात्मा गांधी ने एक बयान प्रकाशित किया—'यह उपवास उन लोगों के विरुद्ध है जिनका मुझ पर विश्वास है। चाहे वे भारतीय हों या विदेशी। यह उपवास उनके विरुद्ध नहीं जिनका मुझ पर विश्वास नहीं। इस उपवास का प्रधान उद्देश्य तो हिन्दू अन्त'करण में ठीक-ठीक धार्मिक कार्यशीलता उत्पन्न करना है।' × हिन्दुओं के हृदय में क्या कार्यशीलता पैदा हुई इसका कोई वर्णन कहीं नहीं मिलता परन्तु महात्मा गाधी का विश्वास है कि उनका प्रत्येक उपवास देश का कल्याण कर उसे उन्नति की ओर ले जाता है। हमें गांधीवाद की नीति को हिन्दू धर्म के हानि लाभ की दृष्टि से नहीं, परन्तु राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से देखना

* कागरेस का इतिहास पृष्ठ० ५१८। × कागरेस का इतिहास पृष्ठ ५६२

है और इसका उत्तर हमें परम गांधी भक्त श्री पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में मिल चुका है।

आन्दोलन चल रहा था परन्तु गांधीवादी नीति पर नहीं। राष्ट्रीय आन्दोलन करनेवालों और सरकार में दांव-पेंच हो रहे थे। कांग्रेस शस्त्र उठाने के उपाय को छोड़कर दूसरे सभी उपायों से सरकार का काम रोकने का यत्न कर रही थी। महात्मा गांधी ने एक बयान निकाल कर इस तरीक़े की निन्दा करदी। परन्तु कांग्रेस करती क्या; उनके पास दूसरा उपाय न था। महात्मा गांधी के एक अनशन का प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन पर देखा जा चुका था। महात्मा गांधी ने मई १९३२ में दूसरे अनशन का एलान किया। यह अनशन अपनी तथा हरिजन आन्दोलन के कार्यकर्ताओं की पवित्रता के लिये महात्मा गांधी ने करने का निश्चय किया था। इस अनशन की ख़बर पा सरकार ने हुकुम दिया कि जिस भाव और उद्देश्य से महात्मा गांधी उपवास कर रहे हैं, उसे ध्यान में रख उन्हें रिहा कर दिया जाय। महात्मा गांधी रिहा कर गये। महात्मा गांधी को मौक़ा मिल गया। रिहा होते ही उन्हों छः हफ्ते के लिये सत्याग्रह मौकूफ़ कर देने की सिफ़ारिश की। सरकार से भी उन्होंने अपील की कि यदि वह देश में शान्ति चाहती है तो उसे सब सत्याग्रहियों को रिहा कर देना चाहिये। इसके बाद वे कांग्रेस और सरकार में समझौता कराने का यत्न करेंगे। महात्मा गांधी की अपील कांग्रेस ने तो मान ही ली परन्तु सरकार ने ठुकरा दी। सरकार को ऐसा "सौदा" मंजूर न था। सत्याग्रह दूसरी दफ़े फिर छ. हफ्ते के लिये मौकूफ़ किया गया और महात्मा गांधी ने वायसराय से मिलकर उन्हें अपनी नेकनीयती का विश्वास दिलाने की आज्ञा माँगी। फिर भी आज्ञा न मिली। महात्मा गांधी और नेता भयंकर दुविधा में पड़ गये। जिस प्रकार आन्दोलन चल रहा था, वह तरीक़ा महात्मा गांधी को मंजूर न था और जिस तरह वे चाहते थे उस तरह आन्दोलन चल

नहीं सकता था। सरकार हृदय परिवर्तन करने के लिये तैयार न थी। आख़िर कांग्रेस का सम्मान कायम रखने का यह उपाय निकाला गया कि व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी किया जाय। कांग्रेस कमेटियों और युद्ध कमेटियों को बरखास्त कर दिया गया।

सबसे पहले महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह किया। उन्होंने साबरमती आश्रम को तोड़ दिया। असहयोगी होने के नाते साबरमती आश्रम की भूमि पर वे लगान अदा नहीं कर सकते थे इसलिये आश्रम की भूमि उन्होंने सरकार की ही नज़र करदी। असहयोग का यह ढंग सांसारिक बुद्धि से नहीं, केवल आध्यात्मिक बुद्धि से ही समझा जा सकता है। असहयोग के इस कार्य को सफल समझा जाय या असफल कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि सरकार ने भूमि लेने से इनकार कर दिया। यदि दीनता दिखाकर सरकार का हृदय पिघलाना ही उद्देश्य था तो उसमें भी सफलता न मिली। इस घटना और पिछली घटना को देखने से असहयोग कांग्रेस की ओर से नहीं, सरकार की ओर से ही हुआ। महात्मा गांधी फिर गिरफ्तार हुये। जेल में असुविधा होने के कारण उन्होंने अनशन किया और रिहा हो गये। * छूट जाने पर फिर सत्याग्रह करना उन्हें सत्य और अहिंसा के विरुद्ध जँचा।

सत्याग्रह के इस लम्बे-चौड़े अनुभव के बाद महात्मा गांधी ने एक महत्वपूर्ण वक्तव्य ७ अप्रैल १९३४ के दिन प्रकाशित किया। इसी वक्तव्य में कांग्रेस के लिये आगे का प्रोग्राम था। इस वक्तव्य के कुछ महत्वपूर्ण अंग इस प्रकार हैं. —

"इस वक्तव्य का मसविदा-मैंने अपने मौन दिवस में सरसा नामक स्थान पर २ अप्रैल को तैयार किया था। मेरे वक्तव्य का एक-एक शब्द गहन आत्म-चिन्तन, हृदय की टटोल और ईश्वर प्रार्थना का परिणाम है। X

'... मैं अनुभव करता हूँ, जनता को सत्याग्रह का पूरा संदेश नहीं मिला है, क्योंकि संदेश जनता तक पहुँचते-पहुँचते अशुद्ध हो जाता है। मुझे यह प्रतीत हो गया है कि आध्यात्मिक संदेश पार्थिव-माध्यम (दुनियावी तरीक़ों) द्वारा पहुँचाने से उसकी शक्ति कम होजाती है। आध्यात्मिक संदेश तो स्वयम् ही अपना प्रचार कर लेते है।'*

महात्मा गांधी ने अपने अनुभव से जान लिया कि सत्याग्रह का आध्यात्मिक संदेश तो अचूक और कभी असफल न होनेवानी शक्ति है परन्तु यह संदेश जनता तक रेल, तार, डाक या दूसरे ऐसे तरीक़ों से पहुँचता है जो आध्यात्मिक न होकर भौतिक हैं, इसलिये इस संदेश की शक्ति निर्बल पड़ जाती है। इस अनुभव के बाद भी उनके आध्यात्मिक संदेश जनता तक इन्ही सब साधनो द्वारा ही पहुँचते हैं। तब इन संदेशों की सफलता की आशा क्यो कर की जा सकती है ? इस तर्क को हम यदि एक क़दम और आगे बढ़ायें तो भयंकर दुविधा में पड़ जाते है। मनुष्य का शरीर और इन्द्रियाँ पार्थिव यानी भौतिक पदार्थ हैं। जिस आध्यात्मिक संदेश को महात्मा गांधी अपने भौतिक शरीर की जिह्वा से कह देते है, वह संदेश भौतिक पदार्थ के सम्बन्ध में आते ही अशुद्ध या निर्बल हो जाता है। इससे एक क़दम और आगे बढ़िये, कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो, उसका दिमाग़ भौतिक पदार्थों से ही बना होगा। ऐसी हालत में ज्यो ही संदेश महात्मा के विचार या मस्तिष्क से आया, वह अशुद्ध हो जायगा। अभिप्राय यह है कि आध्यात्मिक संदेश चाहे वह कितनी ही प्रबल शक्ति क्यों न हो पृथ्वी पर शरीर धारण करनेवाले मनुष्य के काम नहीं आ सकता। यह जानकर भी गांधीवाद मनुष्य का कल्याण आध्यात्मिक संदेश द्वारा ही करने पर तुला हुआ है।

---

* कांगरेस का इतिहास पृ० ५८३।

गांधीवाद और समाजवाद

समाजवाद का चोला

सन् १९३४ के बाद से कांग्रेस का क्रान्तिकारी कार्य-क्रम वैधानिक सुधारो को क्रियात्मक रूप देने की ओर बह गया। सन् १९२० के आन्दोलन के बाद ही कांग्रेस के कुछ लोग आन्दोलन को वैधानिक कशमकश मे न फँसाकर सार्वजनिक रूप देने की माँग करने लगे थे। १९३४ में यह बात बहुत स्पष्ट हो गई। राजनैतिक कार्यकर्ता मेहनत करनेवाली जनता के सम्पर्क मे आये। उनकी अवस्था और शक्ति का उन्हे ज्ञान हुआ। उन्होने अनुभव किया कि विदेशी साम्राज्यशाही के विरुद्ध जनता का यही भाग लड़ सकता है। शोषण और गुलामी इस श्रेणी के लिये जीवन-मरण का प्रश्न है। इनके सामने सम्पत्तिशाली श्रेणी की तरह कम या अधिक अधिकारो से सतुष्ट हो जाने का प्रश्न नहीं।

व्यापक जागृति के कारण किसान, मज़दूर तथा नौकरी पेशा लोग भी शासन और व्यवस्था मे परिवर्तन कर अपनी अवस्था सुधारने की बात सोचने लगे। आन्दोलन मे इस नयी प्रवृत्ति का आधार केवल विदेशी शासन के प्रति भावुकता भरी घृणा और देश भक्ति ही नहीं है। शोषक चाहे हिन्दुस्तानी हों या विदेशी, सभी के हाथ से शोषण का अधिकार यह लोग ले लेना चाहते हैं। इनकी माँग है आम जनता के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नो को कांग्रेस के कार्य-क्रम मे स्थान हो। स्वराज्य का रूप स्पष्ट किया जाय। कांग्रेस की नीति शोषण समाप्त कर मेहनत करने वाली जनता के हाथ में शासन का अधिकार देना हो। इस भावना से मज़दूर-संगठनों ने राजनीति में भाग लेना

शुरू किया और किसान सभायें भी क़ायम होने लगीं। देश में पूँजीवाद का विकास हो जाने से इस प्रकार के आन्दोलन के लिये परिस्थितियाँ पैदा हो चुकी थीं परन्तु इसकी प्रेरणा आई शोषितों के उस संसार व्यापी आन्दोलन से, जो कम्यूनिज़्म और समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुसार संसार से शोषण की व्यवस्था को समाप्त कर श्रेणियों में संघर्ष के कारण दूर करना चाहता है।

यह आन्दोलन आरम्भ में कांग्रेस के संगठन के बाहर ही आरम्भ हुआ। जिन लोगो ने इस आन्दोलन का बीज भारत में बोया, कांग्रेस में पूँजीवादी श्रेणी की प्रधानता को देख वे उस पर भरोसा न कर सके। स्वयम् कांग्रेस में भी पुकार उठने लगी कि स्वराज्य का अर्थ सर्व साधारण जनता के जीवन में आनेवाली कठिनाई दूर कर उन्हें आत्म-निर्णय का अधिकार देना होना चाहिये। कांग्रेस का यह अंग मध्यम श्रेणी का भाग था। पूँजीपति श्रेणी के हित के लिये राष्ट्रकी शक्ति का उपयोग इन्हें खटकने लगा परन्तु इनकी कल्पना बिलकुल साधनहीन जनता (Proletariat) का शासन कायम करने की न थी। समाजवाद के सिद्धान्त इन्हें ठीक जान पड़े क्योंकि यह श्रेणी साधनहीन जनता की सहायता से पूजीवादी श्रेणी के एक छत्र अधिकार को तोड़कर अपना अधिकार क़ायम करने की आशा कर सकती थी। इस श्रेणी के नेता के रूप में प० जवाहरलाल ने समाजवाद की ओर जनता का ध्यान दिलाया। कांग्रेस में आदर्शों और कार्य-क्रम की छान-बीन की प्रवृत्ति पैदा हुई। कांग्रेस की जागृति से मध्यम श्रेणी ने आँखें खोलकर देखा, देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना विरासत के रूप में पूँजीपति श्रेणी अंग्रेज़ों से जिस प्रकार का स्वाराज्य लेना चाहती है, उसमें मध्यम श्रेणी का कोई महत्व न होगा। पूंजीवाद का शीघ्रगामी विकास उन्हें भी तुरन्त ही साधनहीन श्रेणी के दायरे में पहुंचाकर बेबस कर देगा। इस

अनुसार जनता की ग़रीबी का चर्चा कर, जनता को आन्दोलन में क़ुर्बानी का अवसर देकर कांग्रेस ने सर्वसाधारण की सहानुभूति अपनी ओर करली। कांग्रेस की गांधीवादी नीति ने जनता की गरीबी का चर्चा किया, जनता के प्रति सहानुभूति दिखाई परन्तु शक्ति जनता के हाथ में देने की बात कभी न कही। तिस पर भी कांग्रेस का कार्य-क्रम दूसरे राजनैतिक दलों की अपेक्षा जनता को अधिक अपना जान पड़ा और कांग्रेस सभी राजनेतिक दलो से अधिक बलवान बन गई।

इस बात मे समाजवादी विचारधारा का कार्य-क्रम गांधीवादी राजनीति से आगे निकल जाता है। जनता इस कार्य-क्रम पर अधिक विश्वास कर सकती है। समाजवादी कार्य-क्रम समाज की व्यवस्था इस ढंग से क़ायम नहीं रहने देना चाहता कि जनता को कुर्बान कर ठाकुर लोगों के स्वार्थ पूरे होते रहे। वह समाज की व्यवस्था और शासन का अधिकार जनता के हाथ मे ही सौंपना चाहता है। जनता की दुख भरी हालत की ओर तो वह ध्यान दिलाता ही है परन्तु इसके साथ ही वह इस दुर्दशा के वास्तविक कारणो को भी प्रकट करता है और एक क्रान्तिकारी कार्य-क्रम भी पेश कर सकता है। शोषित जनता में जागृति आते ही वह इस बात को ज़रूर अनुभव करती है कि उनकी मेहनत का फल उनसे छीन लिया जाता है, ऐसा नहीं होना चाहिये। वे इस बात को समझने लगते है कि उनकी मेहनत से पैदा ज़रूरत की चीजों से बाज़ार पटे पडे है परन्तु उनकी जरूरत पूरी नहीं हो सकती। वे अनुभव करते है कि मेहनत करनेवाली श्रेणी के परिश्रम से समाज में पैदावार के ऐसे साधन और शक्ति तैयार है, जिससे ज़रूरतमन्दों की तकलीफ़ दूर होनी चाहिये, पर ऐसा नही हो पाता। लाखो आदमी मेहनत करने और अपना पेट भरने का अवसर नहीं पाते। एक ओर तो लोग आवश्यक पदार्थों के बिना तकलीफ़ पाते हैं, दूसरी ओर लोगो को आवश्यक पदार्थ पैदा करने का अवसर

न दे बेकार बना दिया जाता है। पैदावार के साधन होते हुए और पैदावार की आवश्यकता होते हुए भी किसी को बेकार क्यों रखा जाय ? जनता यह भी अनुभव करती है कि पैदावार के साधनों और पैदावार का गलत उपयोग होने की जिम्मेवारी उन्हीं लोगों पर है जिनका इन वस्तुओं पर अधिकार है, जो इनके मालिक बने हुए हैं। पैदावार के जिन साधनों को हज़ारों आदमी मिलकर चलाते हैं, जो साधन हज़ारो लाखों आदमियों के उपयोग के लिये पदार्थ तैयार करते हैं, उनके व्यक्तिगत सम्पत्ति बन जाने से उनका उपयोग हज़ारों लाखों व्यक्तियों के हित के विचार से नहीं, एक व्यक्ति के मुनाफ़े के लिये होता है। समाजवादी विचारधारा इस सब संकट से समाज को बचाने का क्रियात्मक उपाय भी जनता को बताती है।

सम्पत्ति की मालिक श्रेणी, उसकी धन-दौलत की शक्ति चाहे जितनी बड़ी हो, समाज में उसकी संख्या आटे में नमक के बराबर है। यह श्रेणी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण समाजवादी विचारधारा से घबराती है और इसे अपना शत्रु समझती है। परन्तु हज़ार में से नौ सौ निन्नानवे जनता इस कार्य-क्रम से साहस और उत्साह प्राप्त करती है। उनके पास कुछ है ही नहीं, उससे छीना क्या जायगा? अगर वह कुछ खो सकती है तो केवल अपने बन्धनों को, जिन्हें खोकर वे स्वतंत्र हो जायँगे।

मध्यम श्रेणी के शिक्षित व्यक्ति भी, जो दूरदर्शिता से काम लेते हैं, जो अपने आपको समाज का अंग समझकर समाज के कल्याण में अपना कल्याण समझते हैं, सम्पूर्ण समाज के विकास के विचार से समाजवादी कार्य-क्रम की ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकते। यही कारण है कि संसार भर की पूँजी और साधन समाजवादी विचार-धारा के विरुद्ध होते हुए भी साधनहीन श्रेणी का यह आन्दोलन संसार का सबसे अधिक विस्तृत और बलवान आन्दोलन बन चुका है। भारत के राजनैतिक क्षेत्र में भी यह भावना इतनी तेज़ी से फैली कि

कांग्रेस का नियंत्रण करनेवाली श्रेणी और प्राचीन व्यवस्था का समर्थक गांधीवादी इससे घबरा उठे।

समाजवादी विचारधारा का उद्देश्य है—समाज में सब व्यक्तियों को कमाई या पैदावार करने का अवसर समान रूप से मिले और सब व्यक्तियों को अपने परिश्रम की पैदावार पर समान रूप से अधिकार हो। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये समाजवाद यह उपाय बताता है कि पैदावार के साधनों को समाज की सम्पत्ति बना दिया जाय। मनुष्य का जीवन पैदावार (जीवन रक्षा) के साधनों पर निर्भर करता है। जो व्यक्ति या श्रेणी जीवन रक्षा के साधनों की मालिक होगी, वही व्यक्ति या श्रेणी समाज के शासक होंगे और शेष व्यक्तियों या समाज को ऐसे मालिकों के हितों को पूरा करने के लिये अपना जीवन लगाना पड़ेगा। समाज से मालिक और दास, शोषक और शोषित का भेद मिटाने के लिये समाज मे अधिकार और अवसर की समानता लाने के लिये एक ही उपाय है कि पैदावार के साधनो पर किसी व्यक्ति या श्रेणी का हक़ न हो, किसी को ऐसा अवसर या अधिकार न हो कि दूसरों के जीवन की स्वतंत्रता छीन सके। समाज की व्यवस्था इस ढंग पर होने से ही सब व्यक्तियो को समान रूप से स्वतंत्रता मिल सकती है और सम्पूर्ण समाज स्वतंत्र हो सकता है। जनता अपने चारो ओर जीवन के मार्ग में रुकावटें और अड़चनें देखती है। समाजवाद उसे जीवित रहने और विकास का अवसर देने के लिये तैयार है इसलिये उसकी ओर जनता की सहानुभूति होना स्वाभविक ही है।

गांधीवाद मनुष्य के जीवन का उद्देश्य परमेश्वर से साक्षात्कार करना बताता है परन्तु उसके साथ ही उसका एक सांसारिक या राजनैतिक उद्देश्य भी है। यह उद्देश्य 'रामराज्य' की स्थापना है। रामराज्य का रूप चाहे जैसा हो, इसमें लाभ चाहे जिस किसी का हो, इसे क़ायम

समर्थन के लिये खडी हो जाती है। गांधीवाद के समर्थन के लिये चाहे जनता के हृदय से आवाज़ न भी उठे परन्तु ठाकुर श्रेणी की इच्छा से प्रचार के सभी साधन जनता के प्रतिनिधि बन एक स्वर से चिल्ला कर कहने लगते हैं—गांधीवाद ही हमारे लिये एक मात्र मार्ग है और महात्मा गांधी ही दरिद्र और साधनहीन श्रेणी के एक मात्र अराध्यदेव है। सन् १९४९ से स्थापित हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण है। इस सेवक सघो के लिये सब खर्च इस देश के बड़े-बड़े पूँजीपतियो के कोष से आ रहा है और इसके संयोजक करता गांधी आश्रमो के प्रमुख व्यक्ति है परन्तु अन्यलोग प्राय: ऐसे तनखाहदार है जो इससे पूर्व मज़दूर सगठनो से निकालें जा चुके हैं। इन सेवक सघो को मिलो के मालिको की पूरी सहायता मिल रही है। इससे स्पष्ट है कि वे किसका हित पूरा करते है। जनता को राजनैतिक आन्दोलन के मोर्चे पर लाने के बाद जब गाधीवाद ने अनुभव किया कि अपने हितों को प्राप्त करने के लिये जनता गाधीवाद के राजनैतिक उद्देश्य ठाकुरशाही के शासन, रामराज्य को ही समाप्त कर देना चाहती है तो गाधीवाद ने राष्ट्र की राजनैतिक भावना को रचनात्मक कार्य-क्रम मे बहा देने का प्रयत्न करना शुरू किया।

गाधीवाद का रचानात्मक कार्य-क्रम है क्या ? जनता अपनी अवस्था से असतुष्ट हो कर शोषण की व्यवस्था को बदल देना चाहती है। गाधीवाद का प्रयोजन है पुरानी व्यवस्था की रक्षा करना, इसलिये गाधीवाद जतना को समझाता है कि तुम्हारे असतोष के कारणो को रचनात्मक कार्य-क्रम द्वारा दूर किया जा सकता है, व्यवस्था को बदलने की बात छोड़ो जनता की राजनैतिक प्रगति और आर्थिक कारणो से पैदा होनेवाले असंतोष के प्रवाह को पीछे लौट चलने के रचनात्मक कार्य-क्रम के रेगिस्तान मे सुखा देने का प्रयत्न ही भारत की ठाकुरशाही की रक्षा का एकमात्र साधन गांधीवाद को मिला है। मज़ा यह है

कि रचनात्मक कार्य-क्रम जो कि स्पष्टतौर पर आर्थिक प्रश्न है, उसे भी आध्यात्मिक रंग देने की चेष्टा की जाती है ताकि जनता उपयोगिता के विचार से उसकी जाँच न कर, भवगान से साक्षात्कार का उपाय समझ कर स्वीकार कर ले।

यह देखकर कि शोषण का अन्त कर समानता लानेवाला समाज-वाद का कार्य-क्रम जनता को आकर्षित करता है, जनता पर अपना प्रभाव क़ायम रखने के लिये गांधीवाद ने भी अपने कार्य-क्रम का उद्देश्य शोषण का अन्त और समानता लाना बनाया। भारतीय जनता की रुचि उस ओर खीचने के लिये अपने कार्य-क्रम को गांधीवाद ने अहिंसात्मकसाम्यवाद, आध्यात्मिकसाम्यवाद, भारतीयसाम्यवाद आदि नाम दिये। जनता को यह विश्वास दिलाने का यत्न किया गया कि गाधीवाद से समाजवाद के सब उद्देश्य पूरे हो जायँगे। गांधीवाद को एतराज़ है केवल समाजवाद के कार्य-क्रम से क्योकि उसमे श्रेणी संघर्ष और हिंसा है, उसमें मनुष्य और समाज भगवान् से विमुख हो जाते है। गोया कि गांधीवाद में समाजवाद की पश्चिमी सभ्यता से आने वाली सभी बुराइयाँ निकालकर उसे शुद्ध और आध्यात्मिक बना दिया गया है *।

भारतवासियो को यह भी समझाया जाता है कि पश्चिम की परिस्थितियो मे पैदा हुए सिद्धान्त भारत की सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल नहीं हो सकते, दोनो देशो की स्थिति और दृष्टि-कोण मे अन्तर है। समाजवाद के सिद्धान्त भारत के लिये लागू नहीं हो सकते क्योकि वे पश्चिम मे पैदा हुए है परन्तु साबरमती आश्रम मे पैदा हुए सिद्धान्तो के पोलैंड, आस्ट्रिया और इंगलैंड मे सफल हो जाने की आशा कर उन्हें गाधीवाद का उपदेश मज़े मे दिया जा सकता है ×। यदि किन्हीं

* 'गाधीवाद समाजवाद, पृष्ठ ६७। × आस्ट्रिया और पोलैण्ड पर नाज़ियों का आक्रमण होने पर महात्मा गाधी ने उन्हे सत्याग्रह द्वारा शत्रु

सिद्धान्तो को केवल इसलिये हेय समझ लिया जाय कि वे भारत में पैदा नहीं हुए तो भारत का दर्शन शास्त्र भी केवल भारत के लिये ही रह जायगा। इस प्रकार की द्वेष पूर्ण देशभक्ति से ससार मे कभी शान्ति नहीं हो सकती। समाजवाद का सिद्धान्त है कि मनुष्य का जीवन पैदावार के साधनो पर निर्भर करता है। पैदावार के साधनो पर जिस व्यक्ति या श्रेणी का अधिकार होगा उसीके फैसले और हित के विचार से समाज की व्यवस्था चलेगी। समाज में सार्वजनिक हित के विचार से पैदावार के साधनो पर जनता— वे लोग जो किसी-न-किसी प्रकार पैदावार के लिये परिश्रम करते है—का अधिकार होना चाहिये। परिश्रम से पैदा-वार करनेवालों से उनके परिश्रम का फल छीन लेना हिंसा है। यही समाज में विरोध का कारण है। इस हिंसा और विरोध को दूर करने के लिये, इनके कारणो को दूर करना चाहिये।

गांधीवाद यह स्वीकार करता है कि समाज मे हिंसा, अन्याय और शोषण के कारण जनता का जीवन असम्भव हो रहा है। वह यह भी स्वीकार करता है कि इस संकट का कारण पूँजीवादी और जमींदारी व्यवस्था का शोषण है और वह शोषण दूर होना चाहिये। समाजवाद के उद्देश्य को गाधीवाद स्वीकार करता है परन्तु इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये व्यवस्था के परिवर्तन का जो कार्य-क्रम समाजवाद पेश करता है, उसे गांधीवाद स्वीकार नहीं करता। गाधीवाद को एतराज़ है कि इस कार्य-क्रम मे हिंसा है।

गाधीवाद का दावा है कि मिल्कीयत की व्यवस्था मे परिवर्तन किये बिना ही—पूँजीपतियों और ज़मींदारो को पैदावार के साधनो का मालिक रहने देते हुए भी—सत्य और अहिंसा के पालन से सब सामा-

---

का सामना करने का उपदेश दिया था। इसी प्रकार इगलैण्ड को भी महात्मा गाधी जर्मनी के आक्रमण का सामना निशस्त्र होकर करने की सलाह दे चुके है।

जिक वैर, विरोध, हिंसा और शोषण दूर हो सकता है। मेहनत करने वाली श्रेणी को गांधीवाद यह अधिकार नहीं देता कि पैदावार के साधनों पर जनता का अधिकार कायम करें। परन्तु पूँजीवादियों और ज़मींदारो को गांधीवाद उपदेश देता है कि उन्हें अहिंसा और अपरि-त्याग का पालन करना चाहिए। गांधीवाद मे अहिंसा और त्याग का अर्थ है कि पूँजीपति और ज़मींदार मुनाफे से संचित धन का न तो अपनी नितान्त ज़रूरी आवश्यकताओ के इलावा उपयोग करें, न अपने धन को अधिक बढ़ाने की चेष्टा करें। यानि उद्योग धन्दों को वे मुनाफ़ा कमाने के उद्देश्य से न चलायें, बल्कि समाज की ज़रूरतें पूरी करने के उद्देश्य से चलायें। यदि पैदावार के साधनो का उपयोग पूँजीपति के व्यक्तिगत हित के लिये न होकर समाज के हित के लिये होना चाहिए, तो इस सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति बनाये रखकर ही पूँजीपति को क्या लाभ होगा? इस सम्पत्ति के समाज की सम्पत्ति बना दिये जाने में ही पूँजीपति के प्रति क्या हिंसा होगी? यह सम्पत्ति समाज के ही अधिकार मे क्यों न रहे? सम्पूर्ण समाज मे सुव्यवस्था हो जाने से आज दिन पूँजीपति कहलाने वाली श्रेणी को भी लाभ ही होगा?

गांधीवाद के विचार से जो लोग समाज मे सम्पत्ति के मालिक हैं, वे केवल उसके सरक्षक या 'ट्रस्टी' मात्र हैं। सम्पत्ति का उपयोग इन ट्रस्टियो को अपने स्वार्थ के लिये नहीं, समाज की भलाई के लिये ही करना चाहिए। यह उपदेश नया आविष्कार नहीं। यों तो ठाकुरशाही के ज़माने (सामन्त काल) मे भी राजा सामन्त और ठाकुर प्रजा का सेवक माना जाता था, परन्तु वास्तव मे वह स्वच्छन्दता पूर्वक प्रजा पर दमन और शासन करता था या जिस प्रकार गौ को माता कहकर हिन्दू लोग उसके दूध, सन्तान और चाम तक का प्रयोग कर लेते हैं, उसी प्रकार गांधीवाद सम्पत्तिशालियो को साधनहीन जनता का ट्रस्टी और सेवक बनाकर, साधनहीन जनता को दरिद्र नारायण का ख़िताब

देकर संतुष्ट कर देना चाहता है। साधनहीन गरीब जनता के दरिद्र-नारायण कहलाने और सम्पत्ति के मालिको के केवल 'ट्रस्टी' या सेवक कहलाने से समाज में उनकी स्थिति और शक्ति बदल नही जायगी। शोषण, अन्याय और अव्यवस्था के कारण समाज मे उसी प्रकार बने रहेंगे और इस व्यवस्था का उद्देश्य, शोषण भी पूरा होता रहेगा।

सत्य, अहिंसा और त्याग के उपदेश और मालिक को रैयत का सेवक कहना, बहुत पुरानी और घिसी हुई चाल है। अत्याचार को असह्य न बना देकर दया करते रहने के उपदेश शोषक और शासक श्रेणी को सदा से ही दिये जाते रहे हैं, ताकि उनका अत्याचार बगावत खड़ी कर उनके शासन का अन्त न करदे। गांधीवाद भी यही कर रहा है। यदि पूँजीपति और ज़मींदार समाज की सम्पत्ति के ट्रस्टी हैं और उद्देश्य जनता की भलाई है, तो अपने हितो के रक्षक चुनने और अपने हित के लिये व्यवस्था और नीति निश्चित करने का अधिकार जनता को होना चाहिए। समाजवादी यही चाहते है परन्तु गांधीवाद को यह बात मञ्ज़ूर नही। सत्य, धर्म और अहिंसा का उपदेश जनता को दे गांधीवाद समाज के रोगो का इलाज करना चाहता है। उसका कार्य-क्रम है कि मैशीन आदि के कारण परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हो रही है। इन्हें छोड़कर उस युग में लौट चलो, जिस समय मनुष्य को पशु की तरह काम करना पड़ता था। ठाकुरशाही का स्थान विकास द्वारा ले लिया है पूँजीशाही ने। गाधीवाद आइन्दा के लिये विकास के मार्ग को रोक देना चाहता हे ताकि पूँजीशाही का स्थान लेनेवाला समाजवाद न आ सके, पूंजीशाही का स्वत्व क़ायम रहे।

सन् १९३४ से गाधीवाद मुख्यत सिद्धान्तो की लड़ाई लड़ रहा हे। गाधीवाद की समर्थक पूँजीपति श्रेणी काग्रेस मे वैधानिक दाँव-पेंच और प्रचार द्वारा अपनी स्थिति बनाये रखने का यत्न कर रही

है। जिस श्रेणी की कारिन्दागिरी गांधीवाद करता है, वह श्रेणी विदेशी सरकार के सहयोग से अपना अधिक से अधिक स्वार्थ पूरा करने में लगी हुई है और गांधीवाद उसके लिये नैतिक मोर्चाबन्दी कर रहा है। गांधीवाद अहिंसा के पर्दे मे पैदावार के साधनो पर वैयक्तिक अधिकार की रक्षा करना आवश्यक समझता है। जिस समय पैदावार के साधनों को मनुष्य व्यक्तिगत रूप से व्यवहार करता था और उस पैदावार का उपयोग व्यक्ति के व्यवहार के लिये होता था उस समय समाज में शान्ति के लिये पैदावार के साधनो पर व्यक्ति का अधिकार होना ज़रूरी था, ताकि व्यक्ति को उसके परिश्रम का पूरा फल मिल सके, उस पर हिंसा न हो। आज दिन समाज मे पैदावार का कोई काम व्यक्ति अकेले नहीं करता। पैदावार के साधन इस अवस्था में पहुँच गये है कि सैकड़ो हज़ारो व्यक्ति उनमें एक साथ काम करते हैं। इन साधनो से होनेवाली पैदावार सैकड़ो हजारों व्यक्तियों के परिश्रम का परिणाम होती है परन्तु यह परिणाम चला जाता है केवल एक पूँजीपति व्यक्ति के हाथ में। पैदावार का स्वाभाविक नियम यह होना चाहिये कि पैदावार करनेवाला ही उसका मालिक हो और उसका उपयोग कर सके। हमारे समाज मे ऐसा नहीं होता, यही संकट का कारण है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पूँजीवादी अमल में पैदावार के साधनो में विकास हो गया है। पहले समय की तुलना मे पैदावार के साधनो का रूप बदल गया है उन्होंने हथियार के स्थान पर मिल, कारखानो का रूप ले लिया है और पैदावार के काम मे हाथ बटाने के तरीके भी बदल गये है। पहले यह सब काम व्यक्ति-गत रूप से होते थे, अब सामाजिक रूप से होने लगे हैं परन्तु पैदावार के साधनो पर मिल्कियत का तरीक़ा अभी तक नही बदला है। अब काम तो मिल-जुलकर सामाजिक रूप से होने लगे है, परन्तु पैदावार के साधनो पर मिल्कियत अब भी व्यक्ति की है। जनता पैदावार करती

है और उसे पूँजीपति के हाथ मे सौंपकर उसका मुँह ताकने लगती है। इस तरीक़े को बदलने की ज़रूरत है।

वास्तव में परिवर्तन तो हो गया है। मनुष्य के निर्वाह के साधन बदल गये, उन्हें व्यवहार मे लाने का तरीक़ा बदल गया। इन्हें बदलने मे पूंजीवाद ने सहायता दी क्योंकि इससे उसे लाभ हो रहा था। जब इतना बदल गया तो उस व्यवस्था का बचा हुआ तरीक़—पैदावार के बँटवारे का ढंग—भी बदल जाना चाहिए। पूजीवाद इसे बदलने नहीं देना चाहता क्योंकि ऐसा होने से पूजीपति श्रेणी की प्रभुता चली जायगी। संसार भर की मेहनत करनेवाली जनता चाहती है कि उनके परिश्रम से होनेवाली पैदावार पर उनका अधिकार हो। इसके विपरीत ससार भर की पूँजीपति श्रेणी प्रयत्न कर रही है कि यह अधिकार उन्हीं के हाथ मे रहे। पूँजीवाद और समाजवाद का संघर्ष इसी प्रश्न पर है।

पूँजीवाद और समाजवाद मे चलनेवाला यह ससार व्यापी सघर्ष अनेक रूपो मे चल रहा है। अपनी प्रभुता को क़ायम रखने के लिये पूँजीवाद सभी प्रयत्न कर रहा है। कहीं पूँजीवाद को प्रजातंत्र का नाम देकर मज़दूरो की तानाशाही से बचने का प्रचार किया जाता है—जैसे कि इगलैण्ड और अमेरिका में। कहीं पूँजीवाद नाज़ीज्म और फैसिज्म का रूप धारण कर समाजवादी परिवर्तन को राष्ट्रीयता विरोधी बता रहे है। भारतवर्ष में यह काम गांधीवाद समाजवाद और कम्यूनिज्म को हिंसा और देशद्रोह का नाम देकर कर रहा है।

समाजवाद के आदर्शों ने संसार भर मे जनता के मस्तिष्क पर प्रभाव डाल दिया है। विषमता और शोषण को दूरकर समान अवसर लाने की भावना सभी ओर दिखाई देती है इसलिये पूँजीवाद समाजवाद के नाम का पर्दा ओढ़कर जनता को धोखा देने का यत्न भी ख़ूब करता है। जर्मनी मे नाज़िज़्म (नेशनल-सोशलिज्म=राष्ट्रीय-समाजवाद) ने यही किया भारत में यही काम गांधीवाद कर रहा है। ठाकुरो के अधि-

पत्य को वह 'रामराज्य' या साम्यवाद बताता है। इस प्रकार के समाज-वाद के लिये गाधीवाद हमें ठाकुरशाही की सभ्यता मे ले जाना चाहता है। हमे वापिस लौटा ले चलने के लिये गांधीवाद समाज के विकास को नाशक सभ्यता बताता है। हमें यह देखना है कि विकास के मार्ग पर पीछे की ओर लौटने से क्या समाज सुखी और सतुष्ट हो सकेगा ?

मैशीन की सभ्यता

समाज मे अशान्ति, अव्यवस्था, श्रेणियों के सघर्ष और शोषण का कारण गांधीवाद की दृष्टि मे मनुष्य स्वभाव के दुर्गुण, हिंसा, लोभ आदि हैं। लोभ के कारण मनुष्य ने मैशीन बनाई। मैशीन की सभ्यता ने अत्याचार और शोषण फैला दिया। गाधीवाद के विचार मे मैशीनो की चाडाल सभ्यता ने ही भारतवर्ष की सुख शान्ति का नाश किया। म० गांधी अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य'—जिसे वे अपना मुख्य एलान समझते है—पृष्ठ ९७ पर लिखते हैं, "हमारे बुज़ुर्ग बहुत समझदार थे। उन्होने समझ लिया था, करोड़ो को तो ग़रीब ही रहना है। यह सोचकर हमारे पूर्वजो ने हमे भोगविलास से विमुख करने की कोशिश की। फलतः हज़ारो बरस पहले जो हल थे उन्हीं से काम चलाते रहे, हज़ारो वरस पहले जो झोपड़े थे उन्ही को क़ायम रखा सत्या-नाशी प्रतियोगिता को हमने अपने पास फटकने नही दिया। यह नहीं था कि हम लोग यंत्रो की खोज और उन्हें वनाने की विद्या से अनजान थे, लेकिन हमारे पूर्वजो ने देखा कि यंत्रो के जजाल मे फँसकर मनुष्य उनके ग़ुलाम ही बन जायँगे और अपनी नैतिकता छोड़ देंगे।" मतलब यह है कि भारतवासियो के पूर्वजो मे यत्र वनाने की योग्यता तो मौजूद थी परन्तु उन्होने जान बूझकर संघर्ष से बचने के लिये मैशीन की माया को दूर रखा। किस इतिहास के आधार पर यह बात कही गई, कहा नहीं जा सकता। इतिहास मे ऐसा कोई प्रमाण नही मिलता। ईश्वर-प्रेरणा से यह वात कही गई हो तो इतिहास की खोज और तर्क के

लिये वहाँ गुंजाइश नहीं। इतना स्पष्ट है कि वर्तमान युग में मैशीनो से मनुष्य समाज को अपार लाभ हुआ है।

मैशीनो ने मनुष्य की बुद्धि को विकास का अवसर दिया। बुद्धि के विकास से मनुष्य पाप ही क्यो करें? वह नेकी भी कर सकता है। मैशीन ज्ञान स्वरूप सर्वशक्तिमान भगवान् की तरह मनुष्य के लिये अच्छी या बुरी व्यवस्था तैयार नहीं कर सकती। वह केवल साधन है। मनुष्य भलाई या बुराई जो कुछ करने का निश्चय करे, मैशीन उसमें सहायक हो सकती है। स्वयं गांधीवादी भी स्वीकार करते है कि 'यंत्र निर्दोष हैं।' यदि उन्हें समाज के लाभ के लिये उपयोग मे लाया जाय, वे बहुत लाभ पहुँचा सकते है, यदि उन्हे हानि पहुँचाने के लिये व्यवहार मे लाया जायगा तो हानि भी वे वैसी ही पहुँचायेंगे। प्रश्न यह है कि मैशीन किस की सम्पत्ति है? उसका उपयोग करने का अधिकार किसके हाथ में है? और मैशीन का प्रयोग करनेवाले के सामने उद्देश्य क्या है? समाज का लाभ, या समाज की हानि की परवाह न कर अपना लाभ?

समाज का इतिहास बताता है कि मैशीन के प्रभाव ने मनुष्य की शक्ति को बढ़ाकर उसे सुखी होने का अवसर दिया है। मैशीन मनुष्य को थोड़े परिश्रम से बहुत परिश्रम का फल दे सकती है। इसी प्रयोजन से मनुष्य ने मैशीन का आविष्कार और विकास किया है, अपना सर्व-नाश करने के लिये नहीं। यह विश्वास कि मैशीन हिंसा का कारण है, मूर्खतापूर्ण है। हिंसा के लिये मैशीन ज़रूरी नहीं। दो हाथो से गला घोंटकर भी मनुष्य की हत्या की जा सकती है परन्तु इसके लिये मनुष्य के हाथ काट देना बुद्धिमानी नहीं समझी जायगी। यदि मनुष्य मैशीन से बिलकुल ही परहेज़ करता तो आज भी वह वनो मे वृक्षो के नीचे फल चुनचुनकर निर्वाह करता और फलो का मौसिम समाप्त हो

जाने पर भगवान की प्रार्थना करके रह जाता। वास्तव में मैशीन का विकास ही मनुष्य की सभ्यता का इतिहास है।

गांधीवाद मैशीन का बिलकुल ही विरोध करता हो, सो बात भी नही। मैशीन के आरम्भिक रूप, चर्खे और बैलगाडी की वह पूजा करता है परन्तु मैशीन के विकसित रूप रेल, मोटर और मिल से उसे भय लगता है। इसका कारण स्पष्ट है। जब तक मैशीन व्यक्तिगत क्षेत्र की वस्तु रहे गाधीवाद को वह पसन्द है परन्तु जहाँ मैशीन सामाजिक क्षेत्र में पहुँची, उसने व्यक्तिवादी व्यवस्था की जगह समाजवादी व्यवस्था की नीव तैयार की, गाधीवाद को उससे भय लगने लगा।

गांधीवाद का कहना है कि समाज मे हिंसा, शोषण और विषमता का कारण पैदावार का बड़े परिमाण मे होना, सम्पत्ति का कुछ थोड़े से आदमियो के हाथ में जमा हो जाना और उद्योग धन्दो तथा कारोबार का केन्द्रीकरण हो जाना है। इस संकट की जिम्मेवारी वह मैशीन के सिर देता है। इस संकट से बचने का उपाय वह बताता है, मैशीन का बायकाट!

पूँजीपति मैशीनों की सहायता से बडे परिमाण मे पैदावार कर साधनहीनो का शोषण करते हैं, इसलिये सम्पूर्ण समाज को मैशीनों द्वारा होनेवाले लाभ से वंचित कर दिया जाय, यह विचित्र दलील है। मैशीन के हट जाने से ही शोषण कैसे बन्द हो जायगा? मैशीन ही शोषण का साधन हो, सो बात भी नही। शोषण मैशीन से नहीं, व्यवस्था के सहारे होता है। जिस जमाने मे मैशीन न थी, गुलामी की प्रथा द्वारा मनुष्य का शोषण होता था। आज भी इस देश मे जमींदारी और साहूकारे की प्रथा द्वारा किसानो का जैसा भयकर शोषण हो रहा है, यह शोषण संसार के भयकर से भयकर शोषण का मुकाबिला कर सकता है परन्तु उस शोषण में मैशीन का व्यवहार नही होता।

गाधीवाद को शिकायत है कि मैशीन की सहायता से कई आद-

मियों की मेहनत का काम एक ही आदमी बहुत थोड़े समय में कर सकता है, इसलिये मैशीन की पैदावार बड़े परिमाण में और केन्द्रित होकर होती है और मैशीन अनेक मनुष्यों को बेकार कर देती है। इस तर्क का अर्थ यह होता है कि समाज को लाभ पहुँचा सकने के जितने गुण हैं, उन सब से मनुष्य समाज को हानि पहुँच रही है। यह बात ठीक है कि मौजूदा समाज मे पैदावार अधिकतर मैशीन से होती है और समाज में बेकारी और संकट भी ज़रूर है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि इस बेकारी और संकट का कारण मैशीन है।

समाज के लिये पैदावार ज़रूरी है। यदि पैदावार अधिक हो सकती है और बिना कठिनाई के हो सकती है तो इससे सकट क्यों आये ? संकट आने का कारण कुछ और ही है। कारण यह है कि मैशीन की शक्ति का उपयोग समाज के हित में नहीं होने दिया जाता। पहली बात यह कि मैशीन एक व्यक्ति की शक्ति से नही चल सकती है। दूसरी बात कि मैशीन एक व्यक्ति की आवश्यकता से बहुत अधिक पैदा कर देती है। जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है मैशीन दोनो ही तरह व्यक्ति की सीमा से बाहर है। ऐसी अवस्था मे जब उसे व्यक्ति से बाँधने की कोशिश की जायगी, सकट आयेगा ही।

मैशीन को समाज की शक्ति ही चलाती है। मैशीन की पैदावार को खर्च भी समाज ही करता है और मैशीन की पैदावार चाहे जिस सीमा तक बढ़ जाय, समाज उसे खपा सकता है। सकट तभी आता है जब समाज मैशीन को चलाने मे शक्ति लगाने के बाद उसका फल नहीं पा सकता। इससे समाज की शक्ति के खर्च और शक्ति प्राप्त करने के पलड़े बराबर नहीं हो पाते। पैदावार के साधनो और समाज के बीच अटक जानेवाली पूँजीपति श्रेणी ही समाज के काम मे अड़चन डालती है परन्तु गांधीवाद कहता है, इस अड़चन को हटाना हिंसा है।

यदि मैशीन व्यक्ति के अधिकार से निकलकर समाज के अधिकार

मे आ जाय तो मैशीन का कम परिश्रम से अधिक पैदावार करने का गुण संकट का कारण न होकर सुख का कारण बन जायगा। उस समय मैशीन की सहायता से अधिक काम कर सकने का अर्थ दूसरे आदमियों का बेकार होना नहीं होगा बल्कि एक आदमी का बारह घण्टे काम न कर केवल चार घण्टे काम करना होगा। उस समय एक आदमी से कई आदमियो का काम कराकर और उसे बहुत कम मज़दूरी देकर पूँजीपति के लिये मुनाफ़ा कमाना मैशीन का प्रयोजन न होगा; प्रयोजन होगा, सब आदमियो के लिये काम को सहल बना देना।

बेकारी का भय ऐसी अवस्था में हो ही नहीं सकता क्योंकि पैदावार केवल खुशहाल पूँजीपतियो और मध्यम श्रेणी के लोगो के लिये नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिये करनी होगी। बेकार रहने की मजबूरी किसी को न होगी—"करोड़ो आदमियो को तो गरीब ही रहना है" गांधीवाद का यह फैसला समाजवाद को मजूर नही। समाजवाद का आदर्श है—जहाँ तक हो सके समाज के सभी लोगो की सभी आवश्यकतायें पूरी होनी चाहिए, अर्थात् सभी लोगो को अमीर होना चाहिए।

यह विचार कि मैशीन के कारण पैदावार में समय कम ख़र्च होने से, फालतू समय में आराम पाने से आदमी अधिक पाप करता है, मनुष्य का अपमान है। चोरी, डकैती, व्यभिचार इनमे से कौन पाप ऐसा है जो मैशीन का उपयोग होने से पहले न होता था और अब होने लगा? यदि मैशीन की सहायता से मनुष्य को ज़िन्दगी की ज़रूरी चीज़ें आसानी से प्राप्त करने के बाद कुछ समय मिलता है, तो यही समय उसके लिये अपने मनुष्यत्व को अनुभव करने का है। इस समय मे मनुष्य स्वाध्याय कर सकता है, चाहे तो आध्यात्म का चिन्तन कर सकता है या अपने ज्ञान को बढ़ाने तथा जीवन में स्फूर्ति देनेवाले विनोद मे ख़र्च कर सकता है, लेकिन गाधीवाद को यह मंजूर नहीं। सेवकों के

मालिक बन जाने से यदि समाज ख़ुशहाल बन सकता है तो यह उसे मंजूर नहीं ; क्योंकि यह भगवान की बनाई व्यवस्था और 'राम राज्य, के विरुद्ध है।

गांधीवाद समानता की बात सोचता भी है तो पैदावार के साधनों को घटाकर, सब को गरीब और कंगाल बना देने के तरीक़े से। समाजवाद को समाज की हत्या का यह तरीक़ा मंजूर नहीं। वह समाज की शक्ति घटा देने के लिये तैयार नहीं। कंगाली मिटाकर वह सबको सुखी बनाना चाहता है। गांधीवाद का मंशा स्पष्ट है:—चाहे सम्पूर्ण समाज कगाल हो जाय, कंगालों को अमीर नहीं बनने दिया जा सकता—"करोड़ों को तो गरीब ही रहना है।" मतलब यह है कि पड़ोसी का असगून ज़रूर हो जाय उसके लिये चाहे अपनी ही नाक क्यों न कटानी पड़े।

यह विचार कि मैशीन का उपयोग मनुष्य के शरीर को दुर्बल बना देता है, अनुभव से ठीक नहीं जान पड़ना। भारत की अपेक्षा योरुप में मैशीन का उपयोग कही अधिक है। योरुप के लोगो की शारीरिक अवस्था भारत से कही अधिक अच्छी है। योरुप तथा अमेरिका के लोगों के स्वास्थ्य तथा आयु का हिसाव देखने से जान पड़ता है कि वहाँ दोनों मे उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है। यह कहकर अपने आपको धोखा देना कि योरुप के लोग व्यभिचारी हैं और भारत के तपस्वी और ब्रह्मचारी, 'हिन्दुस्तान को किसी से कुछ सीखने की ज़रूरत नहीं', * इस देश के लोगो यो अन्धा वनाकर नाश के गड़े में ढकेलना है। भारत की तपस्या और सदाचार जो उसे मनुष्य के रूप मे दुर्बल, निकृष्ट और शक्तिहीन वनाते है, हमारे किस काम आयेगी ? पश्चिम से आनेवाले विचारो और विज्ञान के विकास से भारत की

---

* "हिन्दू स्वराज्य" महात्मा गाधी, पृष्ठ ६६१।

जनता को अंधा रख, यहाँ की ठाकुर श्रेणी के अधिकारों की रक्षा का प्रयत्न करना जनता के प्रति दग़ाबाजी और विश्वासघात है।

गांधीवाद का यह दावा कि, मैशीनो का व्यवहार छोड़ देने से समाजवाद का आदर्श पूरा हो जायगा, ठीक नहीं। गांधीवाद के उपदेश से समाज मैशीन का व्यवहार छोड़ देगा या नहीं, इस बात का चर्चा करने की ज़रूरत नहीं। बीस वर्ष से गांधीवाद मैशीनो का विरोध कर रहा है परन्तु मैशीनो का प्रचार घटा नहीं, बढ़ ही रहा है। फ़र्ज़ कर लिया जाय कि समाज मैशीन का उपयोग छोड़ देगा इससे समाजवाद कैसे आ जायगा ? मैशीन को छोड़ देने का अर्थ होगा कि उद्योग धन्दों को व्यक्ति अकेले-अकेले करेंगे। इसे सामाजिक ढंग न कहकर वैयक्तिक ढंग कहना होगा।

गांधीवादी विद्वान समाजवाद और साम्यवाद को एक ही चीज़ समझते है। समाजवाद को साम्यवाद कहना भूल है। समाजवाद का अर्थ है मनुष्य के जीवन का सामाजिक या सामूहिक तरीका। समाजवाद उन सब उपायों की उन्नति करना चाहता है जिनसे मनुष्य सामाजिक और सामूहिक ढंग से काम करें। मैशीन एक ऐसा ही उपाय है। सब कामो को सामाजिक ढंग से, सामाजिक हानि लाभ के विचार से करने से समानता-साम्यवाद हो जायगी, यह बात ठीक है परन्तु समाजवाद ज़बरदस्ती समानतो लाने मे या सबको ग़रीब बना देने मे विश्वास नहीं करता। समाजवाद का कार्य-क्रम गांधीवाद से ठीक उलटा है, अर्थात् मैशीनो का अधिक से अधिक विकास और प्रचार हो, समाज की पैदावार करने की शक्ति बढ़े, समाज सभी मनुष्यों की आवश्यकता पूरी करने योग्य हो। समाजवाद जितनी सम्पति समाज के लिये पैदा करना चाहता है, व्यक्तिगत ढंग से उतनी पैदावर हो ही नहीं सकती। समाज मे पैदावार के सामूहिक रूप लेने से ही पैदावार और बटवारे के साधनों का सामाजिक ढग हो सकता है न कि मैशीन

का बायकाट कर उसे घरेलू धन्धे का व्यक्तिगत संकुचित रूप दे देने से।

पूंजीवाद में मैशीनो का जितना अधिक उपयोग होगा, शोषितो की सख्या उतनी ही अधिक बढ़ेगी। उनके एकत्रित और संगठित होकर सबल होने का अवसर आयगा। यही लोग समाजवाद की शक्ति है। इसके विपरीत गांधीवाद मैशीन के बायकाट का उपदेश देकर, जनता को संकट दूर करने के लिये वैयक्तिक ढंग से काम करने के भँवर मे डाल उन्हें बिखेरकर निष्क्रिय बना देना चाहता है। गांधीवाद कहता है, मैशीनो पर सामाजिक अधिकार कायम करने की बात छोडकर अपनी आवश्यकताओं को व्यक्तिगत रूप से पूरा करो। यह बात स्पष्ट है कि मैशीन के मुकाबिले मे व्यक्ति के हाथ की पैदावार के लिये कोई स्थान नहीं। यदि व्यक्ति चाहे तब भी वह हाथ की पैदावार से अपनी सब आवश्यकताओं को पूरा नही कर सकेगा। जिस कगाली से बचने के लिये मेहनत करनेवाली जनता मैशीन मालिको के शोषण से छूटना चाहती है, हाथ की पैदावार उसे उससे भी अधिक दुरावस्था और ग़रीबी में फँसा देगी।

यदि वास्तव में ही मैशीन का उपयोग समाज से हट जाय तो कितने ही रोज़गार बन्द हो जायँगे और समाज मे बेरोज़गारी बेहद बढ जायगी। खेती की पैदावार के अतिरिक्त जीवन का कोई और सहारा न रहेगा। देश की भूमि पर फिलहाल ही इतना बोझ है कि वह देश की जनता का पालन करने में असमर्थ है। गाधीवाद के ग्रामोद्योग के कार्य-क्रम तथा मैशीन के बहिष्कार द्वारा शोषण रोकने के उपदेशो का फल केवल यह हो सकता है कि जनता उत्पत्ति के साधनो को समाज की सम्पत्ति बनाने के मार्ग से हटकर, जो कि विकास का स्वाभाविक मार्ग है, अपनी आवश्यकताओ को घटाने, और दरिद्रता को सहने के अभ्यास करे। मनुष्य समाज या साधनहीन ग़रीब जनता

का इससे कोई उपकार न होगा। ग़रीब किसान, मज़दूरों की तरह रहने से उनके हृदय में हम अपने प्रति श्रद्धा-भक्ति बेशक पैदा कर लेंगे परन्तु इससे किसान मज़दूरों को कुछ सहायता न मिलेगी, न उनकी आर्थिक अवस्था सुधरेगी, न वे अपनी उन्नति की बात सोचेंगे। हाँ, पूँजीपति और ठाकुर लोगों की श्रेणी को इससे अवश्य लाभ होगा। जनता उनकी श्रेणी के हाथ से सम्पत्ति की मिल्कीयत ले लेने का विचार छोड़, भाग्य के भरोसे बैठ जायगी। मृत्यु के मार्ग से ईश्वर का साक्षात्कार करनेवाली गांधीवाद की मृत्युधर्मी नीति का परिणाम और क्या हो सकता है ?

गांधीवादी रचनात्मक कार्य-क्रम

गांधीवादो राजनीतिज्ञो का यह दावा है कि युद्ध काल (आंदोलन चलने के समय) में गांधीवादी नीति सत्याग्रह और असहयोग के मार्ग से स्वतन्त्रता की लडाई लड़ती है। शान्ति काल (आन्दोलन रुका रहने की अवस्था) मे यह नीति रचनात्मक-कार्यक्रम द्वारा देश की जनता की आर्थिक अवस्था सुधारने और उसे स्वतंत्रता की लडाई लड़ने योग्य बनाती है। रचनात्मक-कार्यक्रम का अर्थ है चर्खा, राष्ट्रीय शिक्षा और साम्प्रदायिक एकता। गाधीवादी नीति के उग्र राजनैतिक आन्दोलन की सफलता इस रचनात्मक कार्य-क्रम की बुनियाद पर टिकी है, इसलिये इस कार्य-क्रम की नीति को समझना भी ज़रूरी है।

खद्दर

"Charkha to bring peace to world"

Mahatma Gandhi.

गांधीवाद मैशीन की पैदावार पर क़ायम सभ्यता के विरुद्ध हाथ की दस्तकारी और घरेलू धन्दों से निर्वाह करनेवाली सभ्यता को प्रतिनिधि चर्खे को भारत के राष्ट्रीय झण्डे पर चिपका देने का अर्थ यही है कि कांग्रेस की गांधीवादी नीति भारत को बिना मैशीन के युग में लौटा ले जाना चाहती है। गांधीवाद के मैशीनो का बायकाट कर गरीबा का शोषण दूर करने के प्रोग्राम मे खद्दर का मुख्य स्थान समझा जाता है।

महात्मा गांधी चर्खे को आध्यात्मिक अस्त्र मानते है और चर्खा कातना आत्मिक बल बढ़ाने का उपाय बताते है। उनका कहना है, चर्खा कातने से भारत की ग़रीब, निर्बल प्रजा बलवान और आत्म निर्भर

बन जायगी। चर्खे से आत्मिक बल कितना बढ़ता है, इस विषय पर विचार करना लाभदायक न होगा क्योंकि आत्मिक बल बढ़ाने के दूसरे नुसखे भी है जिन पर हम विचार नहीं कर सकते। उदाहरणतः धूप मे एक टाँग से खड़े होकर तपस्या करना, जेठ की दुपहरिया मे धूनी तापना, सूलो पर लेट रहना या सुलफे का दम लगा लेना। आत्मिक बल की बात छोड़कर हम चर्खे को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखेंगे, कहाँ तक वह देश की कपड़े की आवश्यकता को पूर्ण कर सकता है, बेरोज़गारी दूर कर सकता है, उससे जनता के जीवन की परिस्थितियों मे सुधार हो सकता है।

इस बात मे तो सन्देह और बहस की गुजाइश नहीं कि मिलों से सूत कातने और कपड़ा तैयार करने की अपेक्षा चर्खे से सूत कातने और करघे से कपड़ा बुनने मे कई गुना अधिक मेहनत लगती है। जितनी मेहनत से मिल मे बीस गज़ कपड़ा आसानी से बुना जा सकता है, करघे पर उतनी मेहनत से कठिनाई से एक बालिस्त कपड़ा बुना जाता है। यदि समाज मिल को छोड़ कर चर्खे का व्यवहार करे तो प्रति एक बालिस्त कपड़ा बुनने मे बीस गज़ की बुनाई खर्च होती है। खरीदनेवाले को मिल के कपडे की अपेक्षा खद्दर कहीं मँहगा मिलता है। दलील दी जाती है, खद्दर व्यक्तिगत रूप से मँहगा मिलने पर भी राष्ट्रीय रूप से लाभदायक है। हम भी प्रश्न को राष्ट्रीय रूप से ही देखना चाहते है। राष्ट्रीय रूप से यह मूर्खता होगी कि बीस गज़ कपड़ा बुनने लायक परिश्रम से केवल एक बालिस्त कपड़ा बुना जाय। खद्दर का एक बालिस्त कपड़ा बुनने मे बीस गज़ बुनाई का परिश्रम व्यर्थ नष्ट होता है, उस परिश्रम से देश के नंगे रहनेवालो के लिये अधिक कपड़ा क्यो न बुना जाय, या दूसरे आवश्यक पदार्थ उन लोगो के लिये क्यों न तैयार किये जायँ जो कपड़ा बुनने का काम करते हैं ?

सामाजिक दृष्टिकोण से चर्खे से सूत कातनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा

मैशीन से सूत कातनेवाला व्यक्ति कहीं अधिक सामाजिक सेवा करता है। चर्खे की कताई की मज़दूरी को यदि भावुकता और दया की भावना से अलग करके देखा जाय तो उसका बाज़ार मूल्य किसी भी हालत में दो या तीन आने प्रतिदिन से अधिक नही हो सकता। मैशीन पर सूत कातने वाला व्यक्ति चर्खे की अपेक्षा लगभग २३० गुणा अधिक सूत कातता है और मज़दूरी पाँच छ. गुणा अधिक लेता है। अपेक्षाकृत कम मेहनत से तैयार होने के कारण मैशीन के सूत का दाम बाज़ार में कम होगा। ग़रीब की भी रसाई इस सूत के बने कपडे तक हो सकेगी। चर्खे से कते सूत के बढ़िया कपडे केवल अमीरो के लिये ही होते है। यह बात कल्पना के आधार पर नही कही जा रही प्रतिदिन के व्यवहार मे आप इस सत्य को देखते हैं।

गांधी आश्रमो और खद्दर भन्डारो के बारे में यह सचाई किसी से छिपी नहीं कि उनके ग्राहक केवल अमीर श्रेणी के लोग है। इन खद्दर भण्डारों की बिक्री की जाँच करने पर यह भी मालूम हुआ है कि आश्रमों की बिक्री मे सस्ते खद्दर का अंश बहुत कम होता है। अधिक बिक्री होती है, मंहगे किस्म के कपड़ो की, या रेशमी माल की, जिसे कीमत की परवाह न करनेवाले शौक़ीन लोग ही खरीदते है। चर्खे से सूत कातने वाले मज़दूर की अपेक्षा मैशीन से सूत कातने वाले मज़दूर की आमदनी अधिक होने से वह अपने बनाये हुए कपडे को अधिक मात्रा में खरीद सकता है। इसके इलावा वह बाज़ार से अधिक सौदा खरीद सकने के कारण दूसरे रोज़गारो के लिये गुन्जाइश पैदा करने मे सहायक होता है। चर्खे से सूत कातने वाला व्यक्ति मज़दूरी कम पाने और दूसरे रोज़गारो की पैदावार खरीद सकने मे असमर्थ होने के कारण, देश के व्यापार में सहायक नहीं हो सकता।

खद्दर आंदोलन ने ग़रीब ग्राहक के लिये कोई सहूलियत नहीं की। गांधीवादी नीति का यह दावा है कि और कुछ लाभ खद्दर से चाहे

न हो, परन्तु इससे अनेक ग़रीबों की जेब में थोडा बहुत पैसा पहुँचने मे मदद ज़रूर मिलती है। यह बात ठीक है कि खद्दर के बहाने कुछ गरीब आदमियों की जेब में थोड़ा बहुत पैसा पहुँचता है परन्तु जिस ढंग से यह पैसा ग़रीब आदमी की जेब में पहुँचता है, आर्थिक दृष्टि से उसके अपने कोई पैर नहीं ; वह केवल भावुकता और भीख है। खद्दर खरीदनेवाला व्यक्ति प्रति गज़ कपड़ा खरीदते समय कुछ पैसे -) या =) अधिक देता है, जिसका कि मूल्य उसे कपड़े के रूप में नहीं मिलता। यह पैसा केवल गांधीआश्रम की मोहर के कारण देना पडता है। इसे दान के सिवा और क्या कहा जाएगा ? या इसे राष्ट्रीयता की भावना रखने का जुर्माना समझा जा सकता है। खद्दर की पैदावार से जीवन बितानेवाले कारीगर या प्रबन्धक जनता की राष्ट्रीय भावुकता पर जीवित रहते हैं। इन्हें हम कांग्रेसी अनाथालय के सिवा और कुछ नहीं समझ सकते। पूरी मेहनत करने के बावजूद इनके कार्य का जो मूल्य इन्हें दिया जाता है, वह बाज़ार में उस कार्य के लिये मिलनेवाले मूल्य से कहीं अधिक है। इसका स्पष्ट प्रमाण तो यह है कि आज बीस वर्ष तक खद्दर का महात्म्य गाने के बाद भी खद्दर का व्यवहार अपनी आर्थिक उपयोगिता के कारण नही हो रहा बल्कि गांधीवादी काग्रेस की सिफारिश से ही हो रहा है। यदि कांग्रेस आज खद्दर पर ज़ोर देना छोड़ दे, तो महीने भर मे खद्दर भण्डार लोप हो जायँ। यह भेद किसी से छिपा नहीं कि वर्ष भर मे उतना खद्दर नहीं बिक पाता, जितना गांधी जयन्ती के अवसर पर हुण्डियों की शक्ल मे जनता के गले मढ़ दिया जाता है। खद्दर अमीर लोगों के लिये देश भक्ति का चोला, साधारण श्रेणी के लिये देश भक्ति का जुरमाना, और खद्दर पैदा करनेवालों के लिये महात्मा गाधी के भिक्षा पात्र में मिलनेवाला दान पात्र है। क्योंकि वे समाज को जितने उपयोग की वस्तु देते है, उससे अधिक मूल्य वे पाते हैं। खद्दर पैदा करनेवाला

व्यक्ति कभी स्वाभिमान से यह दावा नहीं कर सकता कि कांग्रेस और गांधीवाद की सिफ़ारिश के बिना वह अपनी मेहनत से अपना पेट भर सकता है।

खादी के अव्यवहारिक होने का सुबूत आचार्य कृपलानी ने स्वयं दिया है। खद्दर का मूल्य बढ़ा देने के विषय में महात्मा गांधी के 'क्रान्तिकारी' कार्य-क्रम का बयान करते हुए वे कहते हैं। महात्मा गांधी ने ......'कार्यकर्ताओं और संगठनकर्ताओं द्वारा पेश किये गये आंकड़ों के आधार पर मिली हुई विशिष्ट सलाह के विरुद्ध जाकर ऐसा किया है *।' महात्मा गांधी की यह तारीफ इसलिये की गई कि खद्दर कातने और बुननेवालों की मज़दूरी बढ़ाने के लिये उन्होंने अपने हुकुम से खद्दर की कीमत बढ़ा दी। व्यापारिक आकड़ों के विरुद्ध चलना किसी दूसरे व्यक्ति के लिये मूर्खता समझी जाती परन्तु महात्मा गांधी के लिये यह तारीफ की बात है। कृपलानी साहब कहते है—'नये प्रयोगों के कारण खादी को ज़्यादा हानि नहीं पहुँची है।' हानि यदि अधिक नहीं पहुँची है तो कुछ तो ज़रूर पहुँची है और वह इस बात का प्रमाण है कि औद्योगिक रूप से खादी मजदूर का पालन करने में असमर्थ है।

खादी के समर्थन के लिये गांधीवादी उसकी आध्यात्मिक खूबियों के अतिरिक्त यह तारीफ़ करते हैं कि इससे देश के साधनहीन ग़रीबों के लिये नया रोजगार पैदा हो गया है और ग्रामोद्योग और हाथ की दस्तकारी के प्रतिनिधि स्वरूप खादी समाज से शोषण और आर्थिक असमानता को दूर करने के साधन स्वरूप है। साधनहीनों के लिये कारोबार के तौर पर खादी की असफलता देख चुकने के बाद समाज में आर्थिक शोषण और असमानता दूर करने में उसकी उपयोगिता को जाँचना भी जरूरी है।

पैदावार करने के साधनों पर मेहनत करनेवाली श्रेणी का अधिकार

* गांधीवाद समाजवाद पृष्ठ ८८।

न होना शोषण का कारण है। इस विषय में खद्दर क्या कर सकता है? कुछ व्यक्ति जो खद्दर के पेशे मे लगे हुए है, यदि उन्हें शोषण से बरी समझ लिया जाय तो भी उन्हे संतुष्ट अवस्था मे नहीं समझा जा सकता। दो-तीन आना रोज़ कमानेवाले यह लोग मिलो मे शोषित होनेवाले मजदूरो की अपेक्षा भी गई बीती हालत मे रहते हैं। शोषण का विरोध किया जाता है, मेहनत करनेवालो की आर्थिक दशा को सुधारने के लिये। खद्दर पैदा करनेवाले बिना शोषण के ही मुसीबत भोगते हैं, शोषण का विरोध वे किस लिये करेंगे। इलावा इसके खद्दर से निर्वाह करनेवालो की संख्या है ही कितनी जो वे समाज की शोषण की व्यवस्था पर कोई प्रभाव डाल सकें?

मिलो मे होनेवाली पैदावार से शोषण होता है परन्तु खद्दर का प्रभाव मिलो द्वारा होनेवाले शोषण पर बिलकुल नहीं पड़ता। इस विषय मे महात्मा गाधीं स्पष्ट कह चुके हैं कि खद्दर का उद्देश्य मिलो का मुकाबिला करना नहीं है ×। खद्दर यदि ऐसा करता तो उसके प्रचार मे मिल मालिको से सहायता क्योंकर मिलती?

अलबत्ता खद्दर जैसे निश्फल उपाय द्वारा शोषण की व्यवस्था को दूर करने का भ्रम शोषण की व्यवस्था को पैर जमाये रहने का अच्छा अवसर देता है। शोषण को दूर करने का सीधा उपाय तो है मेहनत करनेवाली श्रेणी का अधिकार पैदावार के साधनो पर हो। मेहनत करनेवाले जब पैदावार के साधनो के मालिक होंगे तब कोई दूसरा उनके परिश्रम को हथिया नहीं सकेगा। यह मार्ग है श्रेणियो के संघर्ष का, शोषण करनेवाली श्रेणी के हाथ से शोषण की शक्ति लेकर उन्हे शोषक न रहने देना। खद्दर श्रेणी-संघर्ष के सही रास्ते को अनुचित बताकर शोषितो को यह विश्वास दिलाता है कि वे स्वयं अपने हाथ से पैदावर करें तो उनका शोषण हो ही नहीं सकेगा, श्रेणी

× 'गाधी विचार दहन" पृष्ठ १२३।

संघर्ष द्वारा हिंसा की आवश्यकता क्या ?

खद्दर के जन्मदाता और शोषक मिल मालिक इस सचाई को भली भाँति समझते है कि खद्दर मैशीनो की पैदावार से चलनेवाली शोषण की व्यवस्था का बाल भी बाँका नही कर सकता। खद्दर इतना अवश्य कर सकता है कि शोषण की व्यवस्था के कारण बेरोज़गार हो जानेवाली जनता को शक्ति प्राप्त करने के मार्ग से हटाकर चुप-चाप मुसीबत सहने के मार्ग की ओर ले जाय।

चर्खा जिसकी शक्ति मैशीन से सैकडों गुना कम है, कभी मैशीन को निर्मूल नहीं कर सकता। यदि चर्खे मे या हाथ के उद्योग धन्धो में मैशीन का मुकाबिला करने की शक्ति होती तो मैशीन के पैर चर्खे, कर्घे के मुकाबिले मे जम ही न पाते। जिस समय मैशीन का जन्म हुआ, हाथ के उद्योग धन्धो का पूरा साम्राज्य क़ायम था। हाथ के उद्योग धन्धो की स्वाभाविक निर्बलता के कारण ही उनकी मैशीन के आगे पराजय हुई।

खद्दर यदि देश के कपड़े की माँग को किसी भी हद तक पूरा कर सकता तो निश्चय ही वह कपड़े की मिलो के मुनाफ़े का हिस्सा छीनने लगता और कपड़े की देशी मिलो के व्योपारी खद्दर के प्रचार मे अपना प्रतिद्वन्दी देख पाते। जैसा कि वे विदेशी कपड़े को समझते है। लेकिन चतुर पूँजीपति खूब जानते हैं कि खद्दर से ऐसे भय की आशा नहीं। स्वयम् महात्मा गाधी ने भी इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि चर्खा मिलों का स्थान नही ले सकता बल्कि गाधीवाद यह चाहता भी नहीं कि चर्खा मिलो का स्थान ले ले * । इस बात को और भी स्पष्ट कर देने के लिये गांधीवादियो को आज्ञा है कि—'खादी और मिलो मे स्पर्द्धा न होने देनी चाहिए और यदि ठीक हिसाब लगाया जाय तो वह है भी नहीं ×।' जब खद्दर तैयार करने मे साधारण कपड़े की

---

* गाधी विचार दोहन पृ० १३२। × गाधी विचार दोहन पृ० १३३।

अपेक्षा बीस गुना खर्च की गई मेहनत कोई फरक मिलो की लूट के मैदान मे नहीं डाल सकती, तो खद्दर है किस मर्ज़ की दवा ?

खद्दर किस मर्ज़ की दवा है, इस बात को समझने के लिये देखना चाहिये कि कौन लोग खद्दर के विशेष समर्थक है। खद्दर कार्यकर्ता दावे से कहते है कि खद्दर कोई व्यापारिक काम नहीं। वह केवल परोपकार का काम है। परोपकार का यह काम चलता है, पूँजीपतियों के दान से। मिलो से मुनाफा कमाना ही जिन पूँजीपतियो की ज़िन्दगी का उद्देश्य है, वे खद्दर प्रचार के लिये रुपया देते हैं तो इसका भी कारण है। यदि इन मिल मालिको का विश्वास है कि खद्दर से वास्तव में देश की भलाई है, तो इन्हें अपनी मिलें कभी की बन्द कर देनी चाहिए थीं परन्तु ऐसा नहीं हुआ। होता यह है कि पूँजीपति मिलो से लाभ उठाते हुए ग्रामोद्योग से सहानुभूति प्रकट कर उसके प्रचार के लिये सहायता देने को तैयार रहते है।

इस प्रकार के प्रचार में उनका लाभ है। बात यह है कि मिलो से पैदावार कर पूँजीपति मुनाफे की रकमे समेटते हैं और मैशीनो की सहायता से बहुत आदमियों का काम कम आदमियो से कराकर मज़दूरो या मेहनत करनेवालो की बडी संख्या को बेकार बना देते है। इस बेकार जनता के मौजूद रहने के कारण पूँजीपति मज़दूरी के दर को खूब नीचा रख सकते है। काम पर लगे मज़दूरो को सदा धमकी दी जाती है कि यदि तुम असंतुष्ट हो तो तुम्हारी जगह हमे दूसरे मज़दूर मिल सकते है। इस प्रकार साधारण अवस्था मे बेकार मज़दूर और नौकर काम पर लगे-मज़दूरो और नौकरो को बेकारी के भय से दबाये रहते है।

मज़दूरों और नौकरी पेशा लोगो मे जागृति पैदा हो जाने पर यह अवस्था बदल जाती है। मेहनत करनेवाली जनता यह समझ जाती है

कि वह एक श्रेणी है और उनके हित की रक्षा सगठित श्रेणी के रूप में अपनी शक्ति बढ़ाकर पैदावार के साधनो पर अधिकार करने से ही हो सकती है। ऐसी अवस्था मे काम पर लगे मज़दूर और बेकार मज़दूर एक हो जाते है। उस समय मज़दूर श्रेणी का बेकार रहनेवाला अंग पूँजीवाद का घोर शत्रु बन जाता है। इन लोगो के लिये ज़िन्दा रहने का एक ही उपाय रहता है कि वे समाज की व्यवस्था मे परिवर्तन कर ऐसी स्थिति पैदा करें जिसमे उनके लिये भी जीवित रहने का मौक़ा रहे। अर्थात् पैदावार के साधनो पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार हो।

पूँजीवादी प्रणाली के कारण जीवित रहने के लिये अवसर न पाकर जो लोग बेकार हो जाते हैं और जिन्हे पूरी मेहनत करने के बावजूद भूखे नंगे रहना पडता है, वे ही लोग क्रान्ति–परिवर्तन लाने–मे अगुआ होते है। ख़ासकर बेकार रहनेवाले लोग यदि पूँजीवादी प्रणाली की वास्तविकता समझ जायँ और संगठित हो, तो कोई शक्ति उन्हे परिवर्तन से रोक नहीं सकती। परिवर्तन या क्रान्ति से लोग इसलिये डरते है कि उसमें उन्हें सकटो का भय रहता है। परन्तु भूख से तडपते लोग किस संकट से डरेंगे ? इस प्रकार के लोगो की सख्या भारतवर्ष मे तेज़ी से बढ़ रही है। संगठित होने पर यही लोग परिवर्तन करेंगे। इस भय को पूँजीपति ख़ूब समझते है और गांधीवाद की शरण ले, ग्रामोद्योग और खद्दर का ढोग रचकर वे साधनहीन श्रेणी को बहकाने की चेष्टा करते रहते हैं कि क्रान्ति के भयानक मार्ग पर जाने की उन्हे आवश्यकता नही। उसमे हिंसा हे ग्रामोद्योग और चर्खे के आध्यात्मिक और अहिंसात्मक उपाय द्वारा अपनी ज़रूरतें कम कर संतोष से जीवन निर्वाह करना चाहिये। उनके इस मतलब को गांधीवाद पूरा करता है, क्योकि गाधीवाद ठाकुरशाही के उस ज़माने की सत्य, अहिंसा और नैतिकता का प्रचार करता ह जिसका

अभिप्राय ठाकुरों और मालिकों की कृपा से सुखी रहना और उनके अधिकार की रक्षा करना था।

गांधीवाद मनुष्य समाज को मैशीन द्वारा लाभ उठाने की आज्ञा उसी समय देना चाहता है जब पूँजीपति गांधीवाद के अहिंसा के उपदेश को मानकर मैशीन द्वारा शोषण करना छोड़ दें। गाधीवाद पूँजीपतियो को शोषण न करने का उपदेश तो देता है परन्तु उन्हें मालिक बनाये रखकर शोषण का अधिकार उनके हाथ मे ज़रूर रखना चाहता है। शोषण की सम्भावना ही समाज में न रहे, ऐसी व्यवस्था लाना गांधीवाद को मजूर नही। क्योंकि इससे ठाकुरो को दया दिखाने का अवसर न रहेगा उनकी मिल्कीयत क़ायम न होगी। उसका आदर्श है—सामन्तवाद के आदर्श के अनुकूल मालिक शोषण के अधिकार को रखें परन्तु दान दया भी करते जायँ। साधनहीन ग़रीब प्रजा सुखी रहे परन्तु पूँजीपति और ज़मींदार ठाकुरो की दया से, यही 'रामराज्य' है।

मैशीन के विकास से शनै-शनै. ऐसी अवस्था आ रही है कि साधनहीन श्रेणी की संख्या बढ़ रही है, उनकी अवस्था उनमें असतोष और जागृति पैदा कर रही है, वे संगठित हो अपनी शक्ति पहचान रहे है। यह सब परिस्थितियाँ पूँजीपति और ठाकुर श्रेणी को समाज पर अधिकार क़ायम रखने के लिये निर्बल बना रही हैं। ऐसी अवस्था मे पूँजीपति और ठाकुर श्रेणी की स्थिति बनाये रखनेवाले गाधीवाद से हम यही आशा रख सकते हैं कि वह मैशीनों को इस देश और मनुष्य समाज के नाश का कारण बताये और चर्खे से ही इस देश तथा सम्पूर्ण संसार को मुक्ति प्राप्त करने का उपदेश दे ×।

बीस वर्ष के अनुभव से यह बात निश्चय हो चुकी है कि ग्रामोद्योग और घरेलू धन्दे न तो जनता का आर्थिक शोषण दूर कर सके हैं, न

× नेशनल हैरल्ड २७–८–४१ पृ० ६ पर महात्मा गाधी का 'खादी जगत' से उद्धृत लेख Charkha to bring peace to world.

उनसे कोई आर्थिक सुधार हुआ है। वे केवल श्रेणी संघर्ष की भावना को दबा देने का उपाय हैं। इससे श्रेणी संघर्ष मिट नहीं जायगा। पूँजीपति श्रेणी को अलबत्ता इस बात का अवसर मिलेगा कि वह शोषित को देर तक दबाये रखने के लिये गाधीवादी नाज़ीवाद की स्थापना भारत में कर सके।

राष्ट्रीय शिक्षा

गांधीवादी रचनात्मक कार्य-क्रम में दूसरी वस्तु राष्ट्रीय शिक्षा है। राष्ट्रीय शिक्षा से अभिप्राय है, प्रचार द्वारा जनता को स्वतंत्रता की लड़ाई के लिये तैयार करना। जनता को यह ज्ञान होना कि उनकी हालत असह्य है, किस प्रकार के परिवर्तन से उनकी अवस्था सुधर सकती है, परिवर्तन करने का उपाय क्या है, यही राजनैतिक शिक्षा है।

पुरानी व्यवस्था को छोड़कर नयी व्यवस्था लाने के लिये कुछ कारण होने चाहिये। यदि हम नई व्यवस्था समाज में लाना चाहते हैं तो अपनी मौजूदा अवस्था के प्रति समाज में असतोष होना आवश्यक है। संतोष की प्रशंसा कर असंतोष की चाहे जितनी निन्दा की जाय परन्तु समाज को उन्नति और विकास की नई व्यवस्था की ओर उसकी संकटमय अवस्था के प्रति असंतोष ही ले जा सकता है। समाज में जीवन निर्वाह की उचित व्यवस्था और उन्नति की गुन्जाइश न होते हुए भी यदि सतोष किया जायगा तो हिंसा को सहते रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने के सिवा और क्या परिणाम हो सकता है!

भारतवर्ष के लिये राष्ट्रीय शिक्षा यही हो सकती है कि जनता अपनी कठिनाइयों और उनसे मुक्ति प्राप्त करने के उपायों को सामाजिक और राष्ट्रीय रूप में सोचे। सांसारिक उन्नति की बात न सोचकर सदा परलोक की ही बात सोचने से देश की जनता को प्रत्येक बात व्यक्तिगत हानि लाभ के दृष्टिकोण से देखने का अभ्यास हो गया है। इस जीवन और सांसारिक उन्नति को केवल पाप का दलदल समझने

और संसार से परे की वस्तु-ईश्वर-से साक्षात्कार करना जीवन का उद्देश्य समझने से मनुष्य सामाजिक भाव से शून्य हो जाता है। भगवान का साक्षात्कार और परलोक मनुष्य का बिल्कुल व्यक्तिगत मामला है। त्याग, वैराग्य से निर्लिप्त होने के लिये समाज की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। आध्यात्म और निवृत्ति का मार्ग सामाजिकता और राष्ट्रीयता की भावना का विरोधी है।

समाज और राष्ट्र से हमारे सम्बन्ध सासारिक हैं। जब तक हम सांसारिक उन्नति को महत्व नहीं देते, अपने समाज और राष्ट्र की परवाह हमे नहीं हो सकती। समाज और राष्ट्र का अग हम उसी अवस्था मे अपने आपको समझ सकते हैं, जब हमारे हित समाज और राष्ट्र के हित से मिले और पूरे हो। भारत में इस भावना के लाने की आवश्यकता है।

जनता के जिन लोगो का जीवन एक ढंग से गुज़रता है, जिनके लाभ और कष्ट एक बात में हैं वे एक श्रेणी बन जाते है। जनता को उन्नति और जीवन के अधिकार प्राप्त करने के मार्ग पर लाने के लिये श्रेणी के रूप मे मिलकर चलने की शिक्षा देना आवश्यक है। जिन लोगो को इस समय जीवन निर्वाह के अधिकार और साधन नहीं हैं, जो परिवर्तन द्वारा इन्हे प्राप्त करना चाहते है, वे सब एक श्रेणी के है। परिवर्तन और स्वराज्य की आवश्यकता इसी श्रेणी को हे। यही श्रेणी परिवर्तन और स्वराज्य क़ायम कर सकती है। इस श्रेणी की शक्ति सबसे अधिक है, क्योकि प्रति हज़ार मनुष्यो मे नौ सौ निन्नानवे लोग इसी श्रेणी के हैं।

इस श्रेणी के हाथ मे शासन और अधिकार आने में जो श्रेणी अपनी हानि समझती है, वह श्रेणी जनता के राज और स्वराज्य की विरोधी हे। जनता को अधिकार या स्वराज्य मिलने से अधिकारों की मलिक इस शोपक श्रेणी के अधिकार छिनेंगे। जनता और इस श्रेणी

में संघर्ष होगा। सामज मे जब कभी परिवर्तन हुआ, श्रेणी सघर्ष से ही हुआ।

समाज की व्यवस्था सदा बलवान श्रेणी के निर्णय से होती है आइन्दा भी यही होगा। समाज की मौजूदा अवस्था में सबसे अधिक शक्ति शोषित श्रेणी में ही है। इनका हित जिस तरह पूरा हो सके, अधिकार इनके हाथ में रहे, उसी व्यवस्था से समाज मे शान्ति हो सकती है, वर्ना संघर्ष चलता रहेगा। पूँजीपति प्रणाली इस श्रेणी को अस्वाभाविक ढंग से दबाये हुए है। इसी कारण अव्यवस्था है, अव्यवस्था को दूर करने के लिये ही सघर्ष हो रहा हे।

गाधीवाद की राष्ट्रीय शिक्षा का मूल मत्र है, समाज मे श्रेणी सघर्ष नहीं होना चाहिए, क्योकि सघर्ष हिंसा हे। जब समाज मे श्रेणियाँ है, तो उसके परिणाम-शोषण-से कैसे बचा जा सकता हे? प्राण रक्षा के लिये, जीवन की रक्षा के लिये शोषित को संघर्ष करना ही होगा। श्रेणी सघर्ष रोकने का उपाय है कि समाज मे श्रेणियाँ न रहें। यह कम्युनिज्म का समाजवादी कार्य-क्रम हे। समाज और देश मे श्रेणियाँ न रहने से शोषण के कारण और साधन न रहेगे। ऐसी व्यवस्था के लिये प्रयत्न करना ही स्वराज्य का राष्ट्रीय कार्य-क्रम है। यह कार्य-क्रम तभी पूरा हो सकता है, जब हज़ार मे से नौ सौ निन्नानवे अपने हितों को पहचान कर संगठित रूप मे शक्ति और अधिकार प्राप्त करने का यत्न करें। इस मार्ग मे संघर्ष आवश्यक है। गांधीवाद अपनी राष्ट्रीय शिक्षा द्वारा श्रेणी संघर्ष की सम्भावना को रोकने और शोषित और शोषक श्रेणियो के सहयोग के लिये रचनात्मक कार्य-क्रम का उपदेश देता है।

राष्ट्रीय शिक्षा और रचनात्मक कार्य की ज़ाहिरा शक्ल गाँव की गलियो मे झाड़ू लगाना, अछूत श्रेणियो को अक्षरज्ञान कराना, अछूतो के लिये मन्दिर का दरवाज़ा खुलवाना, उन्हे कुँये पर चढ़ाना और

दवाई बाँटना है। यह सभी काम परोपकार और दया के हैं परन्तु जनता का यह बड़ा भाग दूसरे के उपकार और दया के आसरे क्यो पड़ा रहे ? अपनी सहायता और कल्याण करने की शक्ति उनमें क्यो न हो ? इन्हें दलित और मोहताज समझ कर मालिक श्रेणी इन पर दया करने के लिये तो तैयार हो जाती है परन्तु जब यह दलित और मोहताज मालिक श्रेणी की दया और कृपा करने की शक्ति मे हिस्सा-बाँट करना चाहते है, तो मालिक श्रेणी इसे बग़ावत समझने लगती है। गांधीवाद इसे हिंसा बताकर रोकने का यत्न करने लगता है। दया और कृपा का पात्र बने रह कर दलित श्रेणी कभी भी स्वतंत्र और आत्म निर्भर नहीं बन सकेगी। इसका उपाय तो है कि सघर्ष द्वारा यह श्रेणी शक्ति और अधिकार प्राप्त करे।

इस सब दया और परोपकार का एक दूसरा प्रयोजन भी हो सकता है। विदेश से आकर इस देश मे परोपकार के कार्य करनेवाले ईसाई पादरियो के विषय मे महात्मा गांधी की राय है कि उनके इन सब कार्यों से भारत की भलाई नहीं हो रही है। उनमें एक प्रकार का स्वार्थ छिपा है। पूँजीपतियो के धन से चलनेवाले दरिद्र-सहायक गांधी सेवा-संघ, हरिजन सेवक-संघ, हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ, अखिल भारतीय चर्खा-संघ और गाधीवादी राष्ट्रीय शिक्षा के इस दया और परोपकार के कार्य-क्रम मे क्या श्रेणी संघर्ष दबा कर, दरिद्र लोगो को महाजनो की कृपा और दया का विश्वास दिलाकर मोहताज बनाये रखना उद्देश्य नहीं ? वास्तविक प्रयोजन है कि श्रेणी संघर्ष होना चाहिये। श्रेणी संघर्ष, दलितो की अपनी उन्नति का प्रयत्न है, इसके बिना जनता का राज सम्भव नहीं।

संयुक्त मोर्चा

श्रेणी संघर्ष से बचने के लिये राजनैतिक दलील यह है कि विदेशी साम्राज्यशाही की गुलामी से छूटने के लिये हमे इस देश की जनता

की सम्पूर्ण शक्ति स्वराज्य प्राप्ति के मोर्चे पर लगा देनी चाहिये। इस देश की शोषित और शोषक श्रेणियो को आपस मे न लड़कर पहले स्वराज्य ले लेना चाहिये। अपना राज्य हो जाने के बाद, जैसी व्यवस्था जनता चाहेगी, देश में कायम हो जायगी। यह बात कह देने में उतनी ही आसान है जितना कि १९२० मे यह कह देना आसान था कि सब भारतवासी सरकार से असहयोग कर दें तो फौरन स्वराज्य हो जायगा। वह बात अमल में न आसकी। इसी प्रकार भारत की प्रजा के पहले मिलकर स्वराज्य प्राप्त कर लेने और बाद में आपस के झगडे निपटा लेने की बात भी सिर्फ कह देने भर की है। जिन लोगो के उद्देश्यों मे समानता नहीं, उनका एक साथ मिलकर किसी काम को सफल बना लेना सम्भव नही।

स्वराज्य के लिये प्रयत्न करने का विचार उठते ही सवाल पैदा होता है, स्वराज्य होगा क्या? दोनों श्रेणियाँ स्वराज्य का रूप अपने-अपने मन में बनाने लगती है। यदि एक का स्वराज्य दूसरे की पराधीनता और शोषण है, तो वे उसके लिये एक साथ प्रयत्न कैसे कर सकती है? गाधीवाद इस बारे मे गरीब जनता से ही त्याग की आशा करता है। उन्हें उपदेश दिया जाता है, स्वराज्य चाहे जैसा भी हो, पहले भारत-वासियो के हाथ राज्य आने दो, फिर तुम जैसा चाहे कर सकते हो? मानो जनता के कान मे चतुरता से दी जानेवाली सलाह का भेद मालिक श्रेणी को मालूम नहीं। मासूम की तरह वे जनता की चाल-बाज़ी में फँसकर स्वराज्य के लिये कोशिश करेंगे और बाद मे जनता के हाथ मे बेबस हो जायँगे। ऐसे भोलेपन की आशा पक्की बुद्धि की मालिक श्रेणी से नही की जा सकती। पिछले बीस वर्ष के सत्याग्रह असहयोग आन्दोलन मे यह बात स्पष्ट हो चुकी है।

बलिदान करने की आशा की जा सकती है तो केवल साधनहीन श्रेणी से! कुछ छिन जाने का भय उन्हे है नहीं, उनके पास अपना

कहने को केवल शरीर ही है। उनके जीवन पर हरदम संकट आया रहता है। किसी प्रकार जीवन निर्वाह कर अवसर मिले, इस आशा में वे अपने शरीर की भी बाज़ी लगा देते हैं। पिछले बीस वर्ष में इसके एक नहीं अनेक प्रमाण मिल चुके हैं।

मान लिया, स्वराज्य के लिये कुर्बानी करने की अपील शोषित श्रेणी ही से की जाय। परन्तु शोषित श्रेणी किस आशा से यह कुर्बानी करे ? अपनी शक्ति और आवश्यकता का ज्ञान एक दफे शोषित श्रेणी को हो जाने पर उन्हे फिर दबाकर रखना सम्भव न रहेगा, इस बात को गांधीवाद ख़ूब समझता है। इसलिये वह जन आन्दोलन की बात को किसी-न-किसी कारण टाल ही देता है। शोषक श्रेणी अपनी स्थिति को ख़ूब समझती है। संयुक्त मोर्चे की बात उन्हें बहुत पसन्द आती है क्योंकि इससे फिलहाल तो श्रेणी संघर्ष के भय से छुटकारा मिल ही रहा है। यह श्रेणी अपनी हुकूमत में स्वराज्य ज़रूर चाहती है परन्तु यह इतनी अदूरदर्शी नहीं, कि शोषित श्रेणी की शक्ति और जागृति को इतना बढ़ा दे कि आज इस श्रेणी की शक्ति से शासन अधिकार पाकर कल स्वयम उसीके हाथो बलिदान हो जाय। इसलिये आन्दोलन को व्यापक रूप देकर राज-पलट के ढंग पर स्वराज्य का आन्दोलन चलाना उन्हे मंजूर नहीं। वे ऐसा आन्दोलन चाहते हैं, जिससे व्यवस्था मे कोई परिवर्तन न हो, ब्रिटिश सरकार पर शनैः शनैः बोझ पड़ता रहे × और ब्रिटिश सरकार समझौते द्वारा शनैः शनैः शासन की बागडोर इन्हे यो थमाती जाय की शोषित श्रेणियो को उभरकर शासन का अधिकार अपने हाथ मे लेने का मौक़ा न मिल सके।

ब्रिटिश सरकार ऐसा करने के लिये जल्दी तैयार नहीं होती तो भी घबराहट का कोई कारण नहीं। समय टालते जाना ही मालिक-श्रेणी के हक़ में सबसे अच्छी नीति है। बजाय ऐसा स्वराज्य या जनता

× जिस प्रकार का व्यक्तिगत सत्याग्रह सन् १९४० अगस्त से चल रहा है।

का राज्य लाने के जिसमें उनकी आज की सी हुकूमत भी न रहे, मौजूदा हालत ही उनके लिये बेहतर है। पूँजीपति और ज़मींदार श्रेणी की इस भावना को प्रकट करने के लिये गांधीवाद कहता है, यदि स्वराज्य हिंसा * के बिना प्राप्त नहीं हो सकता तो ऐसे स्वराज्य की हमें ज़रूरत नहीं।

जब स्वराज्य के उद्देश्य के बारे में श्रेणियों की एक राय नहीं तो उसके लिये संयुक्त मोर्चा किस प्रकार तैयार हो सकता है? मालिक श्रेणियाँ और गांधीवाद स्वराज्य के लिये सौ वर्ष प्रतीक्षा कर सकता है। स्वराज्य के बिना उनके प्राण नहीं निकले जा रहे परन्तु शोषित श्रेणी के लिये तो मौजूदा व्यवस्था में प्राणों पर संकट आया हुआ है। किस हिंसा के भय से वे स्वराज्य को मुल्तवी कर सकती है? उन पर दिन रात होनेवाली हिंसा से बड़ी हिंसा कौन है? अपने हाथ में शासन का अधिकार लेने के प्रबल और व्यापक कार्य-क्रम को यह श्रेणी उसी समय तक स्थगित किये हुए है जब तक वह संगठन और जागृति द्वारा अपने आपको उसके लिये तैयार नहीं कर लेती। इस उचित तैयारी का अर्थ है, शोषित श्रेणी में जागृति और उनका सैनिक अनु-शासन में संगठन। यदि हम स्वराज्य की आवश्यकता अनुभव करते हैं तो संयुक्त मोर्चे का 'नौमन तेल बटोरने और गांधीवादी नीति को नचाने' (स्वराज्य की लड़ाई लड़ने) का अरमान छोड़कर हमें हज़ार में से नौ सौ निन्नानवे की श्रेणी के बल पर ही उसे लेने का यत्न करना होगा। सब शोषितों का मोर्चा ही संयुक्त मोर्चा है।

शोषित श्रेणी की जनता का राज्य या स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग में जो श्रेणी आकर रुकावट डालेगी, वही श्रेणी संघर्ष को हिंसामय बनायेगी। यदि गांधीवाद श्रेणी संघर्ष को दूर करना और स्वराज्य के लिये संयुक्त मोर्चा बनाना चाहता है तो उसे मालिक श्रेणी को जनता

* इस हिंसा का अर्थ है, श्रेणी संघर्ष।

के हितो को पूर्ण करनेवाली व्यवस्था को स्वीकार करने का उपदेश देना चाहिए परन्तु वह छलता है उल्टा। वह उपदेश देता है, जनता को, ठाकुर श्रेणी के हाथ मे अपनी लगाम दिये रहने का।

साम्प्रदायिक एकता

इस देश की राजनैतिक उन्नति के मार्ग में साम्प्रदायिक फूट एक भयंकर रुकावट है। कांग्रेस का कहना है कि अपना राज कायम रखने के लिये ब्रिटिश सरकार इस देश मे साम्प्रदायिक झगड़े पैदा कर स्वतंत्रता के मार्ग मे रुकावट पैदा कर रही है। यदि साम्प्रदायिक फूट द्वारा इस देश पर अपना राज कायम रखना ब्रिटिश सरकार के लिये आसान रहा है तो सरकार के लिये ऐसा प्रयत्न करना अस्वाभाविक बात नहीं। स्वराज्य के लिये साम्प्रदायिक एकता आवश्यक है तो उसे प्राप्त करने की जिम्मेवारी काग्रेस पर है।

इस काम के लिये गांधीवादी काग्रेस ने तीन उपायो का व्यवहार किया। उन्होने साम्प्रदायिक झगडो की निन्दा की, साम्प्रदायिक झगडे पैदा करनेवाले लोगो को फुसलाने या संतुष्ट करने का यत्न किया और महात्मा गांधी की आत्मिक शक्ति से मुसलमानो को प्रभावित करना चाहा। १९२४ सितम्बर मास मे महात्मा गांधी ने इक्कीस दिन का उपवास कर साम्प्रदायिक झगडो और अत्याचार के विरुद्ध सत्याग्रह किया। इस बारे मे सत्याग्रह की कभी न परास्त होनेवाली आध्यात्मिक शक्ति की सफलता हमारे सामने है।

किसी भी राजनैतिक आन्दोलन को सार्वजैनिक रूप देने का विचार आते ही साम्प्रदायिक झगडे का भय काग्रेस के सामने आ खड़ा होता है। यह एक विचित्र बात है कि ज्यो-ज्यो हमारे देश मे राजनैतिक चेतना बढ़ रही है, त्यो-त्यो साम्प्रदायिकता भी बढ़ती जाती है, इसका अर्थ हम यही समझ सकते है, कि देश के राजनैतिक आन्दोलन की

बुनियाद में कुछ ग़लती है। कांग्रेस की गांधीवादी नीति के रचनात्मक
कार्य-क्रम में साम्प्रदायिकता को मिटाने का काम भी शामिल है परन्तु
इस बारे मे वह कुछ कर न सकी। बजाय इसके कि कांग्रेस साम्प्रदा-
यिकता को मिटा सकती, साम्प्रदायिकता ने कांग्रेस को बेदम कर दिया।

भारत मे साम्प्रदायिकता को बढ़ाने की जिम्मेवारी बहुत हद तक
कांग्रेस की गांधीवादी दीति पर है। साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दो
तरह दिया गया। गांधीवादी कांग्रेस ने अपने प्रति जनता मे श्रद्धा
पैदा करने के लिये धार्मिक विश्वासो या साम्प्रदायिक भावो के सहारे
अपील करना शुरू किया। कांग्रेस के साथ सदा ही साम्प्रदायिक
आन्दोलन लगे रहे। आरम्भ मे खिलाफ़त, फिर सिक्खो के गुरुद्वारा
आन्दोलन और वाद में हिन्दुओ का अछूतोद्धार। इसके अतिरिक्त
राजनीति की बुनियाद मे भारतवासी मात्र के जीवन से सम्बन्ध रखने-
वाली आर्थिक माँगो को महत्व न देकर उसे त्याग का आन्दोलन बना
आध्यात्मिकता का बल देने का यत्न किया गया।

आत्मा, परमेश्वर और आध्यात्म की कल्पना प्रत्येक मज़हब या
सम्प्रदाय के विश्वासो के अनुसार अलग-अलग है। गांधीवाद के तह
में हिन्दू मज़हबी संस्कार हैं। मुसलमानो और ईसाइयो के पसन्द
लायक़ बनाने के लिये इन सिद्धान्तो से ऋषियो और शास्त्रो के नाम
हटा दिये गये हैं परन्तु बुनियादी संस्कार यही है। हिन्दू सम्प्रदाय के
सस्कारो के रंग मे रँगी आध्यात्मिकता को जब कांग्रेस में नीति और
कार्य-क्रम के रूप मे राष्ट्र पर लादने का यत्न किया जाता है तो दूसरे
सम्प्रदाय के लोग अपनी कल्चर और संस्कृति की दुहाई देकर अपना
सगठन अलग बना, अपना अस्तित्व कांग्रेस की हिन्दू राष्ट्रीयता मे न
मिट जाने का यत्न करने लगते है। यदि कांग्रेस मे हिन्दू आध्यात्मिकता
का रंग चढ़ाने की कोशिश न की जाती तो भारत की जनता स्वाभावि
तौर पर एक मिलीजुली संस्कृति और राष्ट्रीयता को जन्म देती।

गाधीवाद ने भारतवर्ष की पुराने संस्कारो—हिन्दू सस्कारो—को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न में नई परिस्थितियो से उठनेवाली संस्कृति के मार्ग मे रुकावट डाल दी। एक सम्मिलित संस्कृति न बनने देकर गाधीवाद ने सम्राट अकबर के दीन-इलाही की तरह गाधीवादी मज़हब को जन्म दिया है, जिसमे मज़हब के नियमो सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह के सभी मज़हबो की पसन्द के लायक़ बनाने की कोशिश की गई है। इससे पुराने चले आये विश्वासो और मजहबो मे यह एक नया मज़हब और विश्वास आ गया है। मज़हब पहले कभी एकता पैदा नही कर सका, वह सदा फूट ही डालता आया है तो गांधीवाद का अधकचरा मज़हब, जिसमे राजनीति और आध्यात्म दोनो शामिल हैं, कैसे एकता स्थापित कर देगा। मज़हब के साथ ही उसने राजनीतिक एकता को भी डुबो दिया।

काग्रेस द्वारा साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलने का दूसरा कारण है, कांग्रेस मे पूँजीपति और मध्यम श्रेणी का नेतृत्व। यह श्रेणी सभी क्षेत्रो मे सबसे अधिक महत्व अपनी श्रेणी के लोगों को ही देती है। राष्ट्रीय आन्दोलन मे दूसरे मज़हबो की जनता को समेटने के लिये काग्रेस पर कब्ज़ा रखने वाले लोगो ने उन मज़हबो की सर्वसाधारण जनता को अपील करने के बजाय, उन मजहबो मे अपनी श्रेणी के लोगो से ही अपील की। जिस तरह काग्रेस में भाग लेनेवाले या उदार विचार के (Liberal) कहानेवाले पूँजीपति और ऊँची-मध्यम श्रेणी के लोग जनता के हितो की अपेक्षा अपने स्वार्थ की चिन्ता करते है, उसी तरह मुसलमान, ईसाई अछूत, सिक्ख आदि सम्प्रदायो के पूँजीपति और ऊँची मध्यम श्रेणी के लोग भी अपने सकुचित स्वार्थो मे फँसे है। पूँजीपति विचारधारा की यह स्वाभाविक वृत्ति है कि अपनी श्रेणी के हित का विचार रखते हुए भी वैयक्तिक स्वार्थ

उन्हें अन्धा कर देता है । * स्वार्थ की यह भावना हिन्दुस्तान के मुसलमान और दूसरे सम्पत्तिशाली लोगों में भी है। जिस मतलब को पूरा करने के लिये कांग्रेस मुसलमानो की सम्पन्न श्रेणी को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये निमन्त्रण देती है, उनके लिये वह प्रयोजन आन्दोलन की तवालत में फँसे बिना, कांग्रेस से दूर रहकर ही पूरा हो सकता है, तब फिर वे राष्ट्रीय आन्दोलन से सहयोग करे तो क्यो ?

किसी भी सम्प्रदाय की जनता ऐसे कार्य-क्रम में सहयोग देने के लिये अवश्य तैयार होगी जिससे उनके जीवन की कठिनाइयाँ दूर हो परन्तु ऐसा कार्य-क्रम आर्थिक होगा। सर्वसाधारण जनता के इस कार्य-क्रम से शोषण करनेवाली श्रेणी को अपनी हानि जान पड़ेगी। गांधीवादी नीति मे इसे हिंसा कहा जायगा। यह बात सही है कि इस प्रकार का आर्थिक आन्दोलन चलाने में पूँजीपति साम्प्रदायिक नेता अड़चनें अवश्य डालेंगे। वे साम्प्रदायिकता का सहारा लेकर जनता को बहकाने और अपने वश में रखने का यत्न करेंगे। इन लोगो का महत्व एक ख़ास सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कहला सकने के कारण ही है। साम्प्रदायिक प्रश्नों और झगड़ो के खड़ा होने पर ही इनकी क़द्र होती है। साम्प्रदायिक मेल हो जाने या इस समस्या के मिट जाने पर इनका कोई महत्व नहीं रहेगा।

यदि यह लोग बेमतलब बातों से जनता का ध्यान आकर्षित कर आन्दोलन खड़ा कर सकते हैं, तो राष्ट्रीय माँगों (जीवन समस्या की मांगो) पर जनता को क्यो सगठित नहीं किया जा सकता ? कांग्रेसी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता की अपीलो की अपेक्षा जनता पर साम्प्रदायिक

* परस्पर होड और मुकाबिला (Competetion) पूँजीवाद का स्वाभाव है। इसी स्वाभाव के कारण पूँजीपतियो की सख्या कम होती जाती है और ससार में साम्राज्यशाही युद्ध सर्वनाश फैलाते हैं।

अपीलों का असर इसलिये अधिक होता है कि उसमे साम्प्रदायिक दृष्टि से लाभ जान पड़ता है। कांग्रेसी आध्यात्मिक राष्ट्रीयता बिलकुल ही खोखली है। समाजवादी आर्थिक कार्य-क्रम की राष्ट्रीयता सर्वसाधारण को अधिक सशक्त और सचेत बना सकती है और उसे मज़हबी भ्रम-जाल की आत्म हत्या से भी बचा सकती है, इस बात का प्रमाण मज़-दूर आन्दोलनो मे मिल चुका है।

जिन स्थानों मे मज़दूर श्रेणी रूप से सचेत हो गये है और अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिये संगठित हो रहे हैं, वहाँ उनमें साम्प्रदायिक वैमनस्य दिखाई नही देता। कानपुर, अहमदाबाद आदि स्थानो मे सन् १९३९ के बाद से साम्प्रदायिक झगडे होने पर भी संग-ठित मज़दूर इन झगड़ो से दूर रहे। साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिये जिस जागृति की आवश्यकता है, उसे गांधीवाद श्रेणी द्रोह कह-कर दबा देना चाहता है।

साम्प्रदायिक द्रोह और हिंसा का उपाय करने के लिये गांधीवाद साहस और वीरता का उपदेश देता है। कभी वह वीरता पूर्वक, हाथ हिलाये बिना मर जाने की सलाह देता है और कभी जब साम्प्रदायिक हिंसा कत्ल, बलात्कार, खासकर सम्पत्ति की लूट का रूप लेती है, तब वह कायरता पूर्ण अहिंसा के बजाय, नितान्त आवश्यक अवस्था में तोला दो तोला शारीरिक शक्ति के प्रयोग की भी राय दे देता है। लेकिन यह सब उपाय साम्प्रदायिक हिंसा को सहने के लिये है, दूर करने के नही। साम्प्रदायिक हिंसा को दूर करने का उपाय तो सर्व-साधारण को जीवन रक्षा के मार्ग पर एकता और सहयोग द्वारा बढ़ना है। इसे श्रेणी द्रोह न कह श्रेणी की आत्मरक्षा कहना ठीक होगा।

समाजवाद का कार्यक्रम

गांधीवाद के सत्य अहिंसा के आदर्शों और क्रियात्मक रूप में

परस्पर विरोध है। सिद्धान्त रूप से गांधीवाद सत्य और अहिंसा की पूजा करता है परन्तु समाज में मौजूद असत्य और हिंसा दूर करने के प्रयत्नों से उसे सहानुभूति नहीं। समाजवाद सत्य, अहिंसा का उद्देश्य मनुष्य समाज की उन्नति और सुख, शान्ति समझता है। इन सिद्धान्तो के अनुकूल जब समाजवादी अन्याय और हिंसा दूर करने का प्रयत्न करता है, गांधीवाद को अहिंसा भंग होती दिखाई देने लगती है। गांधीवाद के सत्य और अहिंसा के उद्देश्य को यदि समाज हित के विचार से क्रियात्मक रूप दे दिया जाय, तो वह समाजवादी कार्यक्रम में बदल जायगा। ऐसा करना गांधीवाद को मंज़ूर नहीं वह अहिंसा के नाम की माला जपकर उसे केवल छिछले तौर पर अमल मे लाना चाहता है। गांधीवाद के अनुसार अहिंसा का आदर्श है:—

"अहिंसा केवल आचरण का स्थूल नियम नहीं बल्कि मन की एक वृत्ति है। जिस वृत्ति मे कही द्वेष की गंध तक न हो उसे अहिंसा समझना चाहिए *। अहिंसा का भाव दृश्य परिमाण मे (दिखावटी) नहीं, बल्कि अन्त:करण की राग द्वेषहीन स्थिति मे है ÷। अहिंसा का साधक केवल इतने से ही सतोष नहीं मान सकता कि वह ऐसी वाणी बोले, ऐसा कार्य करे, जिससे किसी जीव को उद्वेग प्राप्त न हो, अथवा मनमें भी किसी प्रकार का द्वेष भाव न रहने दे, बल्कि जगत मे प्रवर्तित दुखो की ओर भी वह देखेगा और उन्हे दूर करने के उपायों का विचार करता रहेगा। इस प्रकार की अहिंसा केवल निवृत्ति रूप कार्य या निश्क्रियता नहीं, बल्कि जबरदस्त प्रवृत्ति अथवा प्रक्रिया है ×।'

यदि अहिंसा केवल 'निवृत्ति'—यानी हिंसा से परहेज़—ही नहीं,

---

* "गाधी विचार दोहन" पृ० ६।

÷ 'गाधी विचार दोहन' पृ० ७। × पृ० ८।

बल्कि 'प्रवृत्ति'—अर्थात् अहिंसा की स्थापना करना—है, तो इसके लिये प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। समाज में जारी हिंसा का उपाय करने के लिये ऐसे कारणों और साधनों को दूर करना होगा जिनके कारण हिंसा होती है। हिंसा सामाजिक समस्या केवल व्यक्तिगत रूप से अहिंसा का पालन करके हम अहिंसा का पालन करके हम अहिंसा की स्थापना नहीं कर सकते। हिंसा को सहना और उसके विरुद्ध प्रयत्न न करना, हिंसा के साथ सहयोग है।

देश और समाज से हिंसा उन परिस्थितियों को हटाने से ही दूर हो सकती है जिनके कारण जनता अपने जीवन की रक्षा करने में असमर्थ है और अपने परिश्रम के फल पर अधिकार खो बैठी है। इस अहिंसा की स्थापना से समाज के कुछ व्यक्तियों को अपना नुकसान होता जान पड़ता है, तो यह उनका संकीर्ण स्वार्थ हिंसात्मक है। समाज के अंग होने के नाते उनका वास्तविक लाभ सम्पूर्ण समाज के लाभ में है। यदि कुछ लोग अपने संकुचित स्वार्थ से अन्धे होकर सम्पूर्ण समाज को हानि पहुँचायें तो उनके इस काम को रोकना हिंसा नहीं। ऐसा करने का अर्थ यह नहीं कि मालिक श्रेणी के प्रति समाजवादी कार्यक्रम में कोई द्वेष या हिंसा का भाव है, यह कार्यक्रम इस श्रेणी से वैर पूरा करना या बदला लेना नहीं चाहता। समाजवादी कार्यक्रम सम्पूर्ण समाज के लिये समान अवसर और अपने परिश्रम के फल का अधिकार चाहता है। समाज में मालिक श्रेणी के लोग भी शामिल हैं वे उससे अलग नहीं।

गांधीवाद स्पष्ट कहता है—'अहिंसा का भाव दृश्य परिमाण में दिखावटी रूप से नहीं बल्कि अन्तःकरण की वृत्ति में है।' ठीक यही बात समाजवादी कार्यक्रम के बारे में समझनी चाहिए। समाजवादी कार्यक्रम जब यह कहता है कि इस देश के पैदावार के साधन पूँजीपति और ज़मींदारों के अधिकार में न रहकर समाज के अधिकार में रहने

चाहिए, तब उसका अभिप्राय पूँजीपति और ज़मींदार का मन दुखाना नहीं बल्कि समाज से इस श्रेणी के प्रति विरोध की भावना तथा अव्यवस्था दूर करना है। इसलिये समाजवादी कार्यक्रम के अनुसार पैदावार के साधनों को समाज की सम्पत्ति बनाने का यत्न करने में हिंसा की वृत्ति नहीं हो सकती। समाजवाद के बारे में यह धारणा कि वह मालिक श्रेणी के प्रति हिंसा और विरोध की लहर है, अज्ञान और भ्रम है।

समाजवाद को साम्यवाद कहकर उसमें ज़ोर और ज़बरदस्ती से सबको बराबर करने का भाव जोड़ देना भी समाजवाद को जान-बूझकर सिर नीचे और पैर ऊपर कर दिखाना है। जबरदस्ती सबको बराबर करने का अर्थ हो जाता है कि व्यक्ति को अपनी योग्यता, प्रतिभा और सामर्थ्य के व्यवहार का अवसर न होगा। समाजवाद का अर्थ समानता लाने के लिये सबको ठोंक-पीटकर बराबर कर देना नहीं। समाजवाद का अर्थ है, समाज में जीवन का ढंग सामाजिक रूप से हो। दूसरों की हिंसा द्वारा कोई व्यक्ति स्वार्थ को सिद्ध न करे। सबको उन्नति का समान अवसर हो। सब लोग परिश्रम करने का अवसर समान रूप से पायें और अपने परिश्रम के फल पर सबको समान अधिकार हो। यह नहीं कि कुछ आदमियों को तो दूसरों का परिश्रम हड़प जाने का अधिकार हो और अधिकांश को अपने परिश्रम का भी फल न मिले। सामाजिक व्यवस्था सबको उन्नति का समान अवसर देगी। समानता समाजवाद का परिणाम होगा न कि समानता द्वारा समाजवाद लाया जायगा।

अपने कार्यक्रम को पूरा करने के लिये भारतीय समाजवादी रक्तपात और मारकाट का समर्थन नहीं करते। समाजवाद का मार्ग असहयोग द्वारा सत्याग्रह का मार्ग है। समाजवाद के सत्याग्रह और असहयोग का परिणाम गांधीवाद से भिन्न है क्योंकि वह आध्यात्मिकता

और ईश्वर की प्रेरणा के आधार पर नहीं बल्कि सासारिक परिस्थितियो की वास्तविकता के आधार पर क़ायम है।

सत्याग्रह न्याय और अहिंसा प्राप्त करने का साधन है। गांधीवाद इस बात मे समाजवादियो से सहमत है कि इस देश मे भयकर और व्यापक शोषण के कारण हिंसा और श्रेणी विरोध मौजूद है। जनता के जीवन की रक्षा के लिये यह दूर होना चाहिए। समाजवादी इसके लिये शोषक श्रेणी से असहयोग की तजवीज़ करते है। असहयोग क्या है ? गाधीवाद के अनुसार असहयोग का अर्थ है—"विरोधी अपना तंत्र सत्याग्रही पक्ष की सहायता के बिना नहीं चला सकता, ऐसा अनुभव कराना असहयोग का लक्ष है। इसलिये यह असहयोग-निश्चय ही सत्य अहिंसा साधनो द्वारा—इतना तीव्र किया जा सकता है कि जिससे वह तंत्र बन्द पड़ जाय।" * समाजवादी भी इसे स्वीकार करते हैं।

सत्याग्रह के सिद्धान्त के अनुसार असहयोग द्वारा समाजवादियो का कार्यक्रम है कि देश भर के किसानो, कारख़ानो, रेलो, खानो तथा दूसरे कामो मे मज़दूरी या नौकरी कर मौजूदा व्यवस्था को चलानेवाली जनता को उनकी अवस्था और आवश्यकता का ज्ञान कराकर इस व्यवस्था से असहयोग करने का मार्ग बताया जाय। हिंसा और अन्याय की व्यवस्था से असहयोग करना हिंसा नहीं, न इसमे किसी प्रकार की जबरदस्ती है। साधारण शब्दो मे इस असहयोग को देश भर के सभी पेशो और उद्योग धन्दो की आम हड़ताल कहा जा सकता है। इस असहयोग मे देश की उस सब जनता को भाग लेना चाहिये जिन्हे जीवन निर्वाह के लिये उचित अवसर और साधन नहीं मिल रहे और अपने परिश्रम का फल नहीं मिल रहा। मध्यम श्रेणी या ऊँची श्रेणी के अच्छे आमदनी पानेवाले लोग, जो शोषण की व्यवस्था मे सहायक होकर अपना निर्वाह

* "गाधी विचार दोहन" पृ० ६१।

करते हैं, यदि इस व्यापक असहयोग या हड़ताल में शामिल नहीं होते, तो उन्हें शोषित जनता का अंग न समझ मौलिक श्रेणी का ही सहायक समझा जाय परन्तु समाज के लिये पैदावार करने और शोषित होनेवाली श्रेणी के सभी अंगो को इस व्यापक असहयोग में शामिल होना चाहिये।

इस व्यापक असहयोग को सफल बनाने के लिये प्रचार द्वारा जनता को राजनैतिक शिक्षा देने की आवश्यकता है। किसान, मज़दूर, मिस्त्री, मुंशी, बाबू सभी को यह समझना होगा कि वे पैदावार के महान् कार्य के भिन्न-भिन्न अंगो को पूरा करते हैं, वे सब एक हैं। इस असहयोग की सफलता जनता की एकता पर निर्भर करती है। परिश्रम करनेवाली जनता मे से जो व्यक्ति सार्वजनिक लाभ, अपने श्रेणी हित और अपने वास्तविक हित को न पहचानकर, संकीर्ण स्वार्थ से शोषण की व्यवस्था को बनाये रखने के लिये सहायता देना चाहें, उन्हें सत्याग्रह के उपाय द्वारा उनके अपने यथार्थ हित और जनता के सार्वजनिक हित को हानि पहुँचाने से रोकना होगा। यह काम शारीरिक बल से नहीं बल्कि जनता की राय के दबाव (जिसे गांधीवाद नैतिक बल कहेगा) और अहिंसात्मक धरना देने के तरीक़े से होगा। *

* यह विचित्र बात है कि मजदूर या किसान जब अपने परिश्रम की पैदावर का उचित भाग मांगने के लिये आंदोलन करते हैं और अपने साथियों को इस आंदोलन में विश्वासघात करने से रोकने के लिये धरना देते हैं तो गाधीवाद इसे हिंसा का फतवा दे देता है। कानपुर और अहमदाबाद में मज़दूरों ने जब अपने परिश्रम से मालिकों को पहुँचाये हुए मुनाफे में से कुछ भाग माँगकर अपने बाल-बच्चों का भूखा पेट भरने का आन्दोलन किया और इस आंदोलन में साथ न देकर अपनी श्रेणी को हानि पहुँचाने के लिये मिलों में जाने को तैयार मज़दूरों के सामने मिल के दरवाजे पर लेटकर सत्याग्रह किया तो महात्मा गांधी ने मज़दूरों

समाजवादी कार्यक्रम असहयोग और सत्याग्रह में किसी प्रकार के शारीरिक बल प्रयोग या हिंसा को तजवीज़ नहीं करता। यह बहुत सम्भव है कि मौजूदा व्यवस्था में जो श्रेणी अपने शासन द्वारा शोषण कर रही है, इस असहयोग को असफल कर देने के लिये शस्त्रो और बल के प्रयोग द्वारा हिंसा करे। शस्त्रो और बल का प्रयोग पूँजीपति और शासक श्रेणी स्वयम् ही नहीं करती। इस काम के लिये वह शोषित श्रेणी किसान, मज़दूर और नौकरी पेशा लोगों में से ही कुछ को किराये पर ले लेती है। शोषित श्रेणी पर शासन शोषित श्रेणी के लोगो का उपयोग करके ही किया जाता है और इस कार्य के लिये किराये पर लिये गये लोगो का भी शोषण होता है। रोटियो के दाम पर वे समाज के शत्रुओ का राज क़ायम रखते हैं। समाजवादी कार्यक्रम शोषण की व्यवस्था का अन्त करनेवाले आन्दोलन मे इन लोगों को भी शालिम करता है और उन्हें भी श्रेणी हित की राजनैतिक शिक्षा देना चाहता है। निजी संकुचित स्वार्थ मे फँसे हुए कुछ शोषित लोग यदि आरम्भ मे अपनी श्रेणी का साथ न भी देंगे तो आन्दोलन आरम्भ हो जाने पर उनकी आँखें खुल जायँगी। शोषक श्रेणी को बलवान और स्वामी समझ कर यह लोग अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिये उसका साथ देते है। आन्दोलन आरम्भ हो जाने पर लोग अपनी श्रेणी की शक्ति देखेंगे, अपना वास्तविक हित पहचान अपनी श्रेणी का साथ

के काम की निन्दा की और मिल मालिकों का यह अधिकार स्वीकार किया कि वे पुलिस बुलवाकर इन मज़दूरो को गिरफ्तार करवा सकते हैं। यदि शराब और विदेशी कपड़े से होनेवाली हानि से जनता को बचाने के लिये धरना देना सत्याग्रह है तो शोषण द्वारा होनेवाली हिंसा मे सहयोग देने से अपने साथियों को रोकने के लिये मज़दूरो का मिलो के दरवाज़े पर धरना देना क्योंकर हिंसा हो सकती है ?

देने लगेंगे। उस समय 'सेवक धर्म' और 'नमकहलाली *' इन्हें शोषण करनेवाले मालिक के पक्ष मे नही रख सकेगी। यदि मालिक श्रेणी असहयोग करनेवाली शोषित श्रेणी पर हिंसा करेगी तो इस हिंसा की जिम्मेदारी शोषित श्रेणी पर न होकर शोषक मालिक श्रेणी पर होगी। ऐसी अवस्था में शोषक श्रेणी के लिये यही बेहतर है कि वह सदा पीढी दर पीढ़ी हिंसा सहने के बजाय एक दफे हिंसा सहकर जीवित रहने का अवसर और अधिकार प्राप्त करले।

समाज के सब कार्य मेहनत करनेवाली श्रेणी के परिश्रम से ही चलते हैं। शोषण की व्यवस्था से शोषित जनता के व्यापक असहयोग का परिणाम यह होगा कि समाज के सब काम बन्द हो जायँगे। समाज की शोषण और हिंसा के तरीक़े पर चलनेवाली मौजूदा व्यवस्था बन्द हो जायगी। परिश्रम करनेवाली श्रेणी के सहयोग के बिना कोई व्यवस्था नहीं चल सकती। समाज का काम फिर से तभी आरम्भ हो सकेगा जब परिश्रम करनेवाली श्रेणी अपनी शक्ति फिर से समाज के काम में लगाने को तैयार होगी।

---

* सेवक का धर्म मालिक श्रेणी द्वारा अपने सिद्धान्त के लिये गढ़ा हुआ धर्म है जिससे मालिक दूसरे के शरीर और शक्ति द्वारा अपना स्वार्थ पूरा करता है। नमकहलाली के भाव की कल्पना भी इस प्रयोजन को पूरा करने के लिये ही की गई। यह विचार कि नौकर या मज़दूर मालिक का दिया खाता है, ठीक नहीं। पैदा तो मज़दूर, किसान या नौकर ही करता है। यह बात दूसरी है कि मालिक उसे हथिया लेता है। वास्तव में तो मालिक ही मज़दूर का पैदा किया धन या नमक खाता है। किसी का कोई काम या सेवा करके यदि मज़दूरी या कीमत पाई जाय तो उसे मज़दूरी या कीमत देनेवाले की कृपा नहीं समझा जा सकता। यह परिश्रम का मूल्य है, खैरात नहीं।

परिश्रम करनेवाली श्रेणी के सहयोग और निश्चय के बिना समाज चल नहीं सकता। इसलिये यदि मज़दूर श्रेणी सचेत हो जाय नवीन व्यवस्था उनके निश्चय के अनुसार होगी। इस व्यवस्था में एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी पर शासन और शोषण की बुराई न होगी। इस समाज में सभी को समान रूप से परिश्रम करने का अवसर होगा। परिश्रम करनेवाली जनता की यह व्यवस्था किसी के लिये अन्याय न कर सकेगी। अन्याय करने का कोई साधन भी न रहेगा। समाजवादी व्यवस्था में जनता के राज से ऐसी ही व्यवस्था का अभिप्राय है।

इस ढंग से व्यवस्था बदलने में पैदावार के साधनों पर से किसी की मिल्कियत छीनने का सवाल नहीं उठता। मिल्कियत है क्या? पदार्थों से मनुष्यो का सम्बन्ध ही मिल्कियत है। यह सम्बन्ध समाज की व्यवस्था पर निर्भर करता है। समाज इसे स्वीकार करता है तभी इसे माना जाता है। जब व्यवस्था नये सिरे से बनेगी तो पदार्थों और साधनो से मनुष्यो के सम्बन्ध भी नये सिरे से बनेंगे। पैदावार के साधन उसी के अधिकार में रहेंगे जो उनका व्यवहार कर सकेगा। उनका उपयोग समाज की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये होगा।

समाज मे ऐसी शोषण रहित व्यवस्था क़ायम हो जाने पर जिसमें देश के प्रत्येक व्यक्ति को जीवित निर्वाह का समान अवसर हो, प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम का फल पा सकने का अधिकार हो, समाज के सार्वजनिक और शासन सम्बन्धी कामों के प्रबन्ध मे राय देने का हक़ हो, किसी प्रकार का दमन और पराधीनता शेष नहीं रह सकती। समाजवाद ऐसी अवस्था को ही सत्य और अहिंसा समझता है और उसे सत्याग्रह और अहिंसात्मक असहयोग के कार्यक्रम से काम करना चाहता है। यही सत्याग्रह और अहिंसात्मक असहयोग गांधीवाद के आध्यात्मिक सत्य और अहिंसा के उद्देश्य मे उलझकर निर्जीव शव हो जाता है।

सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और असहयोग एक ही वस्तु है। समाजवाद इनके द्वारा समाज के लिये नयी परिस्थितियो में नवीन व्यवस्था क़ायम कर विकास और सफलता के मार्ग की अड़चनो को संघर्ष द्वारा दूर करना चाहता है। गांधीवाद मृतक युग की व्यवस्था को मौजूदा परिस्थितियों पर लादकर समाज को गतिहीन कर देना चाहता है ताकि अधिकार और शासन के आसन पर बैठी श्रेणी के क़दम न लड़खड़ायें।

पुरानी व्यवस्था की रक्षा के लिये गांधीवाद की यह पक्षपात पूर्ण अहिंसा जनता की हिंसा है क्योंकि वह हिंसा की व्यवस्था से निकल कर स्वतंत्र और सशक्त बनने का मार्ग समाज के लिये रोक रही है। इसका बहुत स्पष्ट प्रमाण है गांधीवादी कांग्रेस का १९४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन जो बिना किसी निश्चित राष्ट्रीय उद्देश्य के, सरकार की नीति के नैतिक विरोध के नाम पर, राष्ट्र की शक्ति का खून कर रहा है।

गांधीवाद की शवयात्रा

सत्य-अहिंसा का अन्तिम प्रयोग *

सन् १६२० से १६४० तक कांग्रेस गांधीवादी नीति के नेतृत्व में स्वराज्य के लिये कई दफ़े सत्याग्रह युद्ध कर चुकी थी। सन् १६४० अक्टूबर से एक तीसरा सत्याग्रह आन्दोलन चला। गांधीवादी राजनीति का स्रोत आध्यात्मिकता और ईश्वर की प्रेरणा में रहता है इसलिये सांसारिक बुद्धि की पकड़ में वह ज़रा कठिनाई से आ सकता है। सन् १६४० से चलनेवाला यह आन्दोलन शायद गांधीवाद की बहुत गहरी नीति थी, इसलिये वह समझ से और भी अधिक दूर चली गयी। न केवल इस आन्दोलन का ढंग विचित्र था, बल्कि इसका उद्देश्य भी अद्भुत था।

इस आन्दोलन की विशेषता समझने के लिये आन्दोलन आरम्भ होने की परिस्थितियों को याद कर लेना उपयोगी होगा। कुछ गांधी-वादी राजनीतिज्ञों का कहना है कि स्वराज्य के लिये आरम्भ किया गया आन्दोलन समाप्त कभी भी नहीं हुआ, वह अवस्था के अनुसार केवल रूप बदलता रहा है। सत्याग्रह कभी स्थगित हो जाता है और कभी जारी हो जाता है। हम यहाँ १६४० अक्टूबर से जारी हो जाने वाले सत्याग्रह का ही ज़िक्र कर रहे हैं।

सन् १६३७ में कांग्रेस के मंत्री पद स्वीकार कर लेने के बाद

---

* अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पूना अधिवेशन सितम्बर १६४० में महात्मा गांधी ने कहा था कि यह अन्तिम सत्याग्रह आन्दोलन होगा।

सत्याग्रह स्थगित हो गया था और आन्दोलन ने गांधीवादी राजनीति के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम का रूप ले लिया। कांग्रेसी सरकारो के ज़माने में, जब कांग्रेस से प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार की आधीनता में प्रान्तो का शासन चला कर स्वराज्य पाने का यत्न कर रहे थे, देश की जनता और सर्व साधारण कांग्रेसी संतुष्ट नहीं थे। कांग्रेस के नेताओ से वे लगातार आन्दोलन को आगे बढ़ाकर जनता के जीवन की कठिनाइयों को दूर करनेवाले कार्यक्रम को अमल मे लाने की मॉग कर रहे थे। त्रिपुरी काग्रेस के अधिवेशनो मे यह बात खूब स्पष्ट हो गई थी।

कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन मे और खासकर रामगढ़ अधिवेशन में कांग्रेस नेताओ ने जनता को यह भरोसा दिलाया कि पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आज़ादी ही कांग्रेस का उद्देश्य है, कांग्रेस जनता को उस उद्देश्य की ओर अवश्य ले जायगी। जनता को उस महान कार्य के लिये तैयार हो जाना चाहिये। नेताओ के विचार मे जनता स्वराज्य के युद्ध के लिये तैयार नहीं थी और जनता समझ रही थी कि नेता स्वराज्य के लिये युद्ध को टाल रहे हैं। त्रिपुरी और रामगढ़ मे प्रस्ताव पास करके जनता को विश्वास दिलाया गया कि कांग्रेस भारत की जनता के लिये स्वराज्य प्राप्त करने के उद्देश्य और मार्ग पर दृढ़ है। पूर्ण स्वराज्य से कम किसी भी वस्तु को वह स्वीकार नहीं करेगी। शासन की उस व्यवस्था से जिनके कारण देश के सर्व साधारण का जीवन दूभर हो रहा है, वह कभी सहयोग नहीं कर सकती। शोषण की साम्राज्यशाही व्यवस्था से अपना विरोध दिखाने के लिये साम्राज्यशाही नीति के विरोध की ओर किसी भी साम्राज्यशाही युद्ध में देश के भाग न लेने की प्रतिज्ञा कांग्रेस ने दोहराई।

जनता मे अपनी असह्य अवस्था के प्रति इतना असंतोष था कि काग्रेस की वैधानिक और धीमी नीति के विरोध मे प्रदर्शन होने लगे

गांधीवाद की शवयात्रा

सत्य-अहिंसा का अन्तिम प्रयोग *

सन् १९२० से १९४० तक कांग्रेस गांधीवादी नीति के नेतृत्व में स्वराज्य के लिये कई दफे सत्याग्रह युद्ध कर चुकी थी। सन् १९४० अक्टूबर से एक तीसरा सत्याग्रह आन्दोलन चला। गांधीवादी राजनीति का स्रोत आध्यात्मिकता और ईश्वर की प्रेरणा मे रहता ह इसलिये सासारिक बुद्धि की पकड़ मे वह ज़रा कठिनाई से आ सकता है। सन् १९४० से चलनेवाला यह आन्दोलन शायद गांधीवाद की बहुत गहरी नीति थी, इसलिये वह समझ से और भी अधिक दूर चली गयी। न केवल इस आन्दोलन का ढंग विचित्र था, बल्कि इसका उद्देश्य भी अद्भुत था।

इस आन्दोलन की विशेषता समझने के लिये आन्दोलन आरम्भ होने की परिस्थितियो को याद कर लेना उपयोगी होगा। कुछ गांधी-वादी राजनीतिज्ञो का कहना हे कि स्वराज्य के लिये आरम्भ किया गया आन्दोलन समाप्त कभी भी नही हुआ, वह अवस्था के अनुसार केवल रूप बदलता रहा है। सत्याग्रह कभी स्थगित हो जाता है और कभी जारी हो जाता है। हम यहाँ १९४० अक्टूबर से जारी हो जाने वाले सत्याग्रह का ही ज़िक्र कर रहे है।

सन् १९३७ मे काग्रेस के मंत्री पद स्वीकार कर लेने के बाद

---

* अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के पूना अधिवेशन सितम्बर १९४० में महात्मा गाधी ने कहा था कि यह अन्तिम सत्याग्रह आन्दोलन होगा।

सत्याग्रह स्थगित हो गया था और आन्दोलन ने गांधीवादी राजनीति के अनुसार रचनात्मक कार्यक्रम का रूप ले लिया। कांग्रेसी सरकारों के ज़माने में, जब कांग्रेस से प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार की अधीनता में प्रान्तों का शासन चला कर स्वराज्य पाने का यत्न कर रहे थे, देश की जनता और सर्व साधारण कांग्रेसी संतुष्ट नहीं थे। कांग्रेस के नेताओं से वे लगातार आन्दोलन को आगे बढ़ाकर जनता के जीवन की कठिनाइयों को दूर करनेवाले कार्यक्रम को अमल में लाने की माँग कर रहे थे। त्रिपुरी कांग्रेस के अधिवेशनों में यह बात खूब स्पष्ट हो गई थी।

कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में और खासकर रामगढ़ अधिवेशन में कांग्रेस नेताओं ने जनता को यह भरोसा दिलाया कि पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आज़ादी ही कांग्रेस का उद्देश्य है, कांग्रेस जनता को उस उद्देश्य की ओर अवश्य ले जायगी। जनता को उस महान कार्य के लिये तैयार हो जाना चाहिये। नेताओं के विचार में जनता स्वराज्य के युद्ध के लिये तैयार नहीं थी और जनता समझ रही थी कि नेता स्वराज्य के लिये युद्ध को टाल रहे हैं। त्रिपुरी और रामगढ़ में प्रस्ताव पास करके जनता को विश्वास दिलाया गया कि कांग्रेस भारत की जनता के लिये स्वराज्य प्राप्त करने के उद्देश्य और मार्ग पर दृढ़ है। पूर्ण स्वराज्य से कम किसी भी वस्तु को वह स्वीकार नहीं करेगी। शासन की उस व्यवस्था से जिनके कारण देश के सर्व साधारण का जीवन दूभर हो रहा है, वह कभी सहयोग नहीं कर सकती। शोषण की साम्राज्यशाही व्यवस्था से अपना विरोध दिखाने के लिये साम्राज्यशाही नीति के विरोध की ओर किसी भी साम्राज्यशाही युद्ध में देश के भाग न लेने की प्रतिज्ञा कांग्रेस ने दोहराई।

जनता में अपनी असह्य अवस्था के प्रति इतना असंतोष था कि कांग्रेस की वैधानिक और धीमी नीति के विरोध में प्रदर्शन होने लगे

कांग्रेस के अधिवेशन के दरवाज़े पर ही 'समझौता-विरोधी-सम्मेलन' भी हुआ। कांग्रेस के नेताओ के विचार में समझौता विरोधी सम्मेलन कुछ लोगो की शरारत ही थी। यहाँ हम समझौता विरोधी सम्मेलन करनेवालो और कांग्रेसी नेताओ की ईमानदारी की तुलना नहीं कर रहे। समझौता विरोधी सम्मेलन के उद्देश्यो की तह मे चाहे जो कुछ रहा हो परन्तु इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि चोटी के सभी लीडरो के विरोध के बावजूद जनता की सहानुभूति की दृष्टि से समझौता विरोधी सम्मेलन असफल नहीं रहा। जनता कूटनीति नही समझ सकती। किसी हद तक वह अदूरदर्शी भी हो सकती है और अवसरवादियो के धोखे मे भी फँस सकती है परन्तु इतना तो स्पष्ट था कि जनता अपनी हालत से बेचैन होकर परिवर्तन के लिये अधिक उत्साह पूर्ण तरीक़े से क़दम उठाने के लिये तड़प रही थी। कांग्रेस के समाजवादी और कम्यूनिस्ट लोगो ने संस्था के रूप मे समझौता विरोधी सम्मेलन मे सहयोग नहीं दिया। वे कांग्रेस के मुकाबिले मे दूसरी प्रतिद्वन्द्वी संस्था बना देना उचित नहीं समझते थे। वे महात्मा गांधी और गांधीवादी नेताओ की छत्रछाया मे चलनेवाली कांग्रेस के साथ ही रहे, परन्तु इस कांग्रेस मे उन्होने उसी कार्यक्रम पर ज़ोर दिया जिसकी माँग समझौता विरोधी कानफ्रेंस करनेवाला दल कर रहा था।

रामगढ़ कांग्रेस का अधिवेशन संक्षेप मे स्वतंत्रता के लिये जनता के नये उत्साह और दृढ़ निश्चय से सत्याग्रह युद्ध आरम्भ करने का निश्चय था परन्तु इस निश्चय मे और बीस वर्ष पहले आरम्भ किये गये सत्याग्रह युद्ध मे एक भारी अन्तर था। बीस वर्ष पूर्व नेताओं ने जनता को युद्ध के लिये पुकारा था। इस समय जनता नेताओं पर युद्ध आरम्भ करने के लिये ज़ोर डाल रही थी। कांग्रेस की सर्वसाधारण जनता और कांग्रेस पर अधिकार रखनेवाली श्रेणी का भेद बढ़ता जा रहा था।

कांग्रेस के नेता इस समय विचित्र परिस्थिति मे थे। साम्राज्यशाही युद्धों से असहयोग करने के प्रस्ताव कांग्रेस पिछले कई वर्ष से लगातार पास करती आ रही थी। १६३६ सितम्बर मे युद्ध आरम्भ हुआ और ब्रिटेन ने भारत को इस युद्ध मे फंसा दिया। कांग्रेस के नेतृत्व के सामने प्रश्न आया, वे क्या करें ? भारत के ग्यारह प्रान्तो में से नौ प्रान्तो पर कांग्रेस मत्री मण्डलो का शासन था। शासन की जिम्मेवारी सिर पर होने के कारण वे इस युद्ध में सहयोग दें, या कांग्रेस के प्रस्तावो के अनुसार असहयोग करें ? इस प्रश्न को दो दृष्टिकोणो से देखना ज़रूरी था, एक तो यह कि कांग्रेस की नीति का जनता पर क्या प्रभाव पडता है और दूसरा शासन के अधिकार किस प्रकार बढाये जा सकते है।

कांग्रेस का रवैया सदा रहा है, जनता की पुकार का दबाव अंग्रेज सरकार पर डालकर सुधारो की माँग करना। इस नीति से लाभ उठाने के लिये यह मौक़ा बहुत अनुकूल जान पडा। कांग्रेस चुनाओ के मैदान में अपनी शक्ति ब्रिटिश सरकार को दिखा चुकी थी। भारत की जनता के नाम वायसराय की सहायता की अपीलों से कांग्रेस यह भी ख़याल कर रही थी, कि उनके असहयोग का प्रभाव इस समय बहुत पड़ेगा। इस बारे में भी सन्देह न था कि जनता आन्दोलन के लिये तैयार थी। कांग्रेस ने जनता का विश्वास अपने प्रति दृढ़ बनाये रखने के लिये और सरकार पर दबाव डालने के लिये नवम्बर १६३६ मे सरकार से असहयोग कर दिया।

इस असहयोग का कारण जनता को बताया गया कि कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य – जनता के राज के लिये लड़ेगी। साम्राज्यशाही युद्ध मे वह देश की शक्ति बलिदान नहीं होने देगी। ब्रिटिश सरकार के सामने कारण रखा गया कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्ध मे जनता के प्रतिनिधियो, यानी कांग्रेस की राय के बिना ही घसीट लिया। यह भारत का अपमान है। भारत युद्ध मे सहयोग स्वयम् अपने निश्चय, अपनी

इच्छा और लाभ के विचार से ही दे सकता है। ब्रिटेन से युद्ध का उद्देश्य स्पष्ट करने के लिये कहा गया। माँगपेश की गई कि ब्रिटेन भारत को स्वराज्य दे दे तो यह मान लिया जायगा कि यह युद्ध साम्राज्यशाही युद्ध नहीं और फिर भारत अपने जन-धन से युद्ध में सहायता करेगा।

आन्दोलन टालने का यत्न

कांग्रेसी मन्त्री मण्डलों के इस्तीफे दे देने के बाद ग्यारह मास तक आन्दोलन की पैंतराबाज़ी होती रही। जनता को सत्याग्रह द्वारा मृत्यु का सामना कर स्वराज्य की लड़ाई लड़ने के लिये तैयार होने को कहा जाता रहा और कांग्रेसी नेता सरकार से युद्ध मे भारत की सहायता का भाव तोल करते रहे। महात्मा गांधी कांग्रेस के दूत बनकर वायसराय से मिलते रहे। कांग्रेस के नेताओं को आशा थी कि उनकी मागें सरकार मजूर कर लेगी। इसका मतलब स्पष्ट था कि वे भारत की स्वतंत्रता के लिये लड़ाई की तैयारी नहीं कर रहे थे; माँग रहे थे कुछ और अधिकार।

जून १९४० में कांग्रेस ने अपनी कार्यकारिणी (वर्किंग कमेटी) समिति के प्रस्ताव में सरकार को यह इशारा दिया कि स्वराज्य के मामले में कांग्रेस बेशक अहिंसा और निशस्त्र आन्दोलन के सिवा और किसी उपाय पर विश्वास नहीं रखती, परन्तु बाहरी आक्रमण के मामले में इस नीति का उपयोग ज़रूरी नहीं अर्थात् कांग्रेस को अपनी सहायता का मूल्य मिलने पर वह अपना सहयोग युद्ध मे दे सकती है।

कांग्रेस का यह प्रस्ताव गांधीवाद की अहिंसा को उद्देश्य मानने की नीति के विरुद्ध था। परन्तु इस समय कांग्रेस का नेतृत्व करनेवाले दल के सामने अहिंसा नहीं, सरकार से समझौता करने का प्रश्न मुख्य था। राजनीति मे आध्यात्म और धर्म को मिला देने की कठिनाई इस

समय कांग्रेस के नेताओं के सामने आई। वे युद्ध की स्थिति से लाभ उठाना चाहते थे परन्तु महात्मा गांधी अहिंसा के पालन पर डटे थे। अपना काम गाधीवाद से निकलता न देख उन्होंने गांधीवादी नीति को अमल न आने योग्य आदर्श बताकर एक ओर ढकेल दिया परन्तु महात्मा गांधी की प्रशसा अवतारी पुरुष के रूप में भी अवश्य कर दी गई। महात्मा गांधी को कांग्रेस की यह अनीति पसन्द नहीं आई। उन्होने जुलाई के प्रथम सप्ताह के हरिजन मे कांग्रेस के नेताओ पर पद ग्रहण क लोभ के छींटे कसे। इतना होने पर भी गाधीवाद और काग्रेस का पूँजीवाद दोनो एक दूसरे की सहायता बिना नहीं चल सकते थे इसलिये जून के अन्त में कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से महात्मा गांधी को वायसराय से मुलाक़ात करनी ही पड़ी। *

सरकार पर दबाव डालने और जनता को संतुष्ट करने के लिये स्वराज्य प्राप्ति के लिये आन्दोलन चलाने की बातें ज़ोर शोर से की जा रही थीं। आन्दोलन की बातें तो की जा रही थीं परन्तु आन्दोलन चलने पर वह काग्रेस की नेताशाही के हाथ मे नहीं रहेगा यह बात रामगढ़ के प्रदर्शनो से स्पष्ट हो चुकी थी। आन्दोलन चलने पर शासन के अधिकार हथियाने का जो मौक़ा आया था उससे लाभ उठाने की आशा भी बिलकुल छोड देनी पड़ती। आन्दोलन समाप्ति के बाद उस भूचाल से क्या अवस्था पैदा होती, इसे कौन बता सकता था। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि महात्मा गाधी और गाधीवाद कांग्रेसी नेताओ की रक्षा जनता से करने के लिये आगे नहीं बढ़ रहे थे।

* इस मुलाक़ात में यदि महात्मा गाधी ने सत्य और हृदय की निष्कपटता से काम लिया होगा तो वायसराय के सामने महात्मा गांधी और काग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी के भेद भी जाहिर हो गये होंगे। वायसराय साहब को यह समझने में कुछ भी दिक्कत न हुई होगी कि वास्तविक आन्दोलन का कुछ भय नहीं।

ऐसी अवस्था में आन्दोलन के बजाय सरकार से समझौते का मार्ग ही काग्रेस नेताशाही को ठीक जँचा। समझौते को आसान बनाने के लिये कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने जुलाई के प्रथम सप्ताह में अपनी माँग को और घटाया। वर्किंग कमेटी की माँग थी—'पूर्ण स्वतंत्रता के वायदे की घोषणा तो तत्काल ही हो जानी चाहिए। सरकार का काम जैसे चल रहा है चले। केवल केन्द्र मे एक अस्थायी सरकार जनता के प्रतिनिधियों की सरकार के रूप में स्थापित हो जाय *। इस केन्द्रीय सरकार के साथ प्रान्तीय सरकारों का सीधा सम्बन्ध होना चाहिये। ऐसा हो जाने पर कांग्रेस युद्ध में ब्रिटेन की सहायता के लिये पूरे तौर पर जुट पड़ेगी।' वर्किंग कमेटी के दिल्ली और पूना के प्रस्तावों में यही बात थी।

आन्दोलन गांधीवादी नीति को भी मंजूर नहीं था परन्तु जिस अहिंसा, धर्म और नैतिकता के जय-जयकार से गांधीवाद ने जनता पर कब्ज़ा करने में सफलता प्राप्त की थी, कांग्रेस नेताशाही (कांग्रेस हाईकमाण्ड) द्वारा कुछ रियायतो के लिये उस अहिंसा को यों बेच दिया जाना गाधीवाद को सह्य न था। अहिंसा और प्रेम की प्रतिष्ठा के लिये इस समय गांधीवाद ब्रिटिश सरकार के प्रति सहानुभूति दिखाना चाहता था अधिकारो की माँग करना नहीं। कांग्रेस नेताशाही बिना कुछ पाये अपनी सहानुभूति देने को तैयार न थी इसलिये दोनो में 'चख़-चख हो ही गई। गाधीवाद ने कांग्रेस की नीति को पद अधिकार का लोभ बताया और परम गाधीवादियो को कांग्रेस से इस्तीफ़े देकर बाहर निकल आने के लिये कहा। महात्मा गाधी ने फ़ैसला दिया

* इस अस्थायी सरकार का मतलब था, केन्द्र में एक कमेटी की नियुक्ति जिसमें काग्रेस का प्राधान्य रहे। वायसराय की कौंसिल काग्रेस की माँग को पूरा कर सकती है यदि उसमें कागरेस का प्राधान्य हो परन्तु वायसराय कागरेस की शक्ति को इनता अधिक नहीं बढा देना चाहते।

कि कांग्रेस अहिंसा के परम धर्म से गिर रही है। मानों, काँग्रेस को धर्म स्वराज्य या शासन अधिकार पाना नही, अहिंसा की साधना ही था ×।

गाँधीवाद को उनका प्रयोजन सिद्ध करने के बजाय स्वयम् उन पर आक्रमण करते देख कांग्रेस नेताशाही तिलमिला उठी। अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी के पूना अधिवेशन में (२७-२८ जुलाई १६४०) जनता के सामने गाधीवाद की अव्यवहारिकता की खूब कलई खोली गई। श्री भूलाभाई देसाई ने बताया—कांगरेस अहिंसा से नहीं गिर रही बल्कि महात्मा गांधी ही ऊपर चढ़े चले जा रहे हैं। अहिसा में हमारा विश्वास पहले का सा ही है परन्तु उसे हम संसार की वर्तमान दशा के साथ मिलाकर देखना चाहते है ·······यहीं हमारा महात्मा गांधी से मतभेद है। कांग्रेस राजनैतिक संस्था है। अहिंसा का प्रचार करना उसका उद्देश्य नहीं। जिस बात को पूरा करने का हमे स्वयं विश्वास नहीं, उसके लिये वायदा करना गहरी बेइमानी होगी।

श्री राजगोपालाचार्य ने स्थिति यो स्पष्ट की—शुद्ध अहिंसावादियों से मेरा कहना है कि अगर आप मानते है कि बिना सेना के राज्य संचालन किया जा सकता है, तो आप भारी ग़लती करते हैं। खुद महात्माजी अब तक क्या करते रहे है ? रंगरूट भरती का आन्दोलन उठाने के समय (१६१४) क्या अहिंसा मे उनकी निष्ठा कुछ कम थी ? हिन्दुस्तान को तुरन्त पूर्ण स्वाधीन बनाना असाध्य कार्य हो सकता है। यही सोचकर हमने केन्द्र मे तुरन्त राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की माग पेश की है। वह मंजूर करली जाय तो हमें ब्रिटेन की

× यदि महात्मा गाधी के विचार मे कागरेस अब तक अहिंसा की साधना आदर्श रूप में करती आ रही थी तो उनके स्वयम् कागरेस के मेम्बर न बनने का कारण क्या था ?

सहायता करनी चाहिये। मै इस प्रश्न पर व्यवहारिक दृष्टि से विचार करना चाहता हूँ। हम स्वतंत्रता चाहते हैं। ... हमें देखना होगा कि इस कार्यवाही से हम आगे बढ़ सकते हैं या नहीं १। ... इसलिये ब्रिटेन से यह कहने में कोई असंगति नहीं कि अगर तुम हमारी माँग पूरी कर दो, तो हम भारत के जन-धन से तुम्हारी सहायता करेंगे। परिस्थिति बदल जाने के कारण हमे अपनी माँग नये और निश्चित रूप में पेश करनी पड़ी है २। श्री राजगोपालाचार्य ने यह भी याद दिलाया कि कराची कांग्रेस मे महात्मा गांधी ने भारत की जनता के लिये हथियार रखने के अधिकार की माँग की थी उसका अहिंसा से क्या सम्बन्ध था?

सरदार पटेल इससे भी अधिक साफ़ बात कह गये—'लड़ाई शुरू होने पर जब गांधी जी पहले वायसराय से मिले, तो यह आश्वासन दे आये कि मेरा बस चले तो इस संकट के समय ब्रिटेन को शर्त कराये बिना ही मदद दिलाऊँ ३। ... गांधीजी सब कुछ कर सकते हैं। उनकी बराबरी हम नहीं कर सकते। ... स्वाधीन हुए बिना यदि हम ब्रिटेन की मदद करन लग जायँ, तो हमारी पराधीनता का बन्धन कसने के लिये हमारी ही शक्ति का उपयोग होगा। ... हम ऐसे मूर्ख नही।'

कांग्रेस के प्रधान मौलाना अब्दुलक़लाम आज़ाद ने काग्रेस का निश्चय प्रकट करने के लिये कहा—'कांग्रेस ने महात्मा गांधी का नेतृत्व क़ायम रखने के लिये पूरी कोशिश की लेकिन फ़िलहाल वह कामयाब नहीं हुई। अगर अगली लडाई मे काग्रेस को महात्मा गांधी

१—अभिप्राय है ब्रिटेन को सहायता देकर हम स्वराज्य पा सकते हैं या नहीं? २—इसका अर्थ यह हो सकता है कि यदि युद्ध आरम्भ न होता तो आन्दोलन की परिस्थिति न आती। ३—यह आश्वासन अहिंसा पालन के लिये सिद्धान्त रूप से युद्ध के विरोध के कहाँ तक अनुकूल है?

का नेतृत्व प्राप्त न हो सका और आन्दोलन ज़रूरी हुआ तो ऐसी हालत में कांग्रेस नेतृत्व की जिम्मेदारी स्वय सम्भालेगी।' *

मौलाना आज़ाद ने महात्मा गांधी के नेतृत्व के बिना ही लड़ाई चलाने का विचार प्रकट किया था, परन्तु लड़ाई से उनका अभिप्राय समझौते से ही था। लड़ाई या लडाई का तमाशा रचने की आवश्यकता पड़ते ही फिर महात्मा गांधी को डिक्टेटर बनाना पड़ा क्योंकि इसके बिना जनता को प्रभावित नहीं किया जा सकता था। अलबत्ता, समझौता करने के लिये कांग्रेस महात्मा गांधी की सहायता बिना भी तैयार थी। कांग्रेस की यह सब तजवीजें सरकार ने नामजूर कर दीं। इसका कारण एक हद तक यह था कि वायसराय गैर कांग्रेसी दलों के सहयोग पर भरोसा कर सकते थे। इलावा इसके चतुर ब्रिटिश नीतिज्ञ जनता की माँगो और कांग्रेस नेताशाही की माँगो मे अन्तर देख रहे थे। इतना ही नहीं, कांग्रेस को नेताशाही और महात्मा गाधी का भेद भी उनके सामने प्रकट था। फिर आन्दोलन का भय क्या था ?

कांग्रेस की सहायता और समझौते की सब तजवीज़े ठुकरा दीं जाने के बाद भी कांग्रेस नेताशाही को आन्दोलन मंज़ूर न था। उन्हे भय थे। प्रथम तो आन्दोलन का रूप इस प्रकार का हो जाने का भय था कि कांग्रेस की नेताशाही का नेतृत्व उसमे क़ायम नहीं रह सकता था। दूसरे भारत की पूँजीपति श्रेणी युद्ध से आर्थिक लाभ उठाने के मौक़े को आन्दोलन द्वारा बरबाद नहीं कर देना चाहती थी। परन्तु आन्दोलन के वायदो से जिस जनता को कांग्रेस की सहायक और समर्थक बनाया गया था, उसे किस प्रकार संतुष्ट किया जाता ?

---

* अहिंसा के सम्बन्ध में कागरेस के प्रमुख नेताओ के यह विचार सिद्धान्त रूप से श्री के० एम० मुन्शी के विचारों से भिन्न नहीं परन्तु महात्मा गाधी ने इन्हें कागरेस से इस्तीफा देने की सलाह नहीं दी।

२७ और २८ जुलाई को पूना में जिन कांग्रेसी नेताओं ने सरकार से समझौता हो जाने की आशा में गांधीवादी नीति की अव्यवहारिकता की पोल खोली थी, उन्हीं नेताओ ने आन्दोलन चलाने के लिये मजबूर होकर १५ सितम्बर, ४० के अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में जनता को समझाया कि एक मात्र महात्मा गांधी ही उन्हें स्वतंत्रता की ओर ले जा सकते हैं। सरदार पटेल ने जनता से अपील की कि वे एकमत से प्रस्ताव पास करें और दुनियाँ को गाँधी जी के प्रति अपनी भक्ति दिखा दें। उन्होने यह भी विश्वास दिलाया कि यदि सन् १९२० और १९३० जैसा वातावरण होता तो महात्मा गांधी सार्वजनिक आन्दोलन कर देते। १९२० और १९३० जैसा वातावरण से अभिप्राय क्या था, यह पटेल साहब ने स्पष्ट नहीं किया। पहले की अपेक्षा अब अन्तर यह आ गया है कि जनता की अवस्था अधिक असंतोषजनक हो गई है और जनता मे जागृति भी अधिक है।

अहिंसा प्रचार का युद्ध विरोधी आन्दोलन आरम्भ करने से पहले महात्मा गांधी एक दफ़े फिर वायसराय के पास पहुँचे। यदि आन्दोलन आरम्भ करना ही था तो उसके लिये वायसराय से मिलने की क्या ज़रूरत हो सकती थी ? कांग्रेस जो कुछ करती, सरकार के सामने स्वयम् ही आ जाता। वायसराय से मिलने का प्रयोजन यही हो सकता था कि ब्रिटिश सरकार अहिंसा प्रचार के नाम पर कागरेस का 'युद्ध विरोध करने के अधिकार' सरकारी तौर पर स्वीकार कर ले, कागरेस की प्रतिष्ठा जनता की नज़रो मे बच जाय और आन्दोलन को टाल दिया जा सके। अगर सरकार कागरेस की यह प्रार्थना मान लेती तो इससे कागरेस अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के विश्वास में युद्ध विरोध का प्रचार करने की मुसीबत से बच जाती। इससे न तो युद्ध बन्द हो जाता और न युद्ध में

शाही गाधीवाद में विश्वास नहीं रखती बल्कि अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये उसे हथियार के तौर पर उपयोग में लाती है।

हिक कार्य है। किसी व्यक्तिगत के कार्य को आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। जिस आन्दोलन मे बीस-पच्चीस हजार व्यक्ति भाग लें, उसे व्यक्तिगत किस तरह समझा जा सकता है? कांग्रेस के इस सत्याग्रह-आन्दोलन को व्यक्तिगत आन्दोलन का नाम देने का प्रयोजन उसे आम जनता के सम्पर्क से दूर रखकर कुछ चुने हुए व्यक्तियो के क्षेत्र मे सीमित रखना था? ऐसा करने का कारण था कि आन्दोलन जनता की स्वाभाविक माँग को पेश नहीं बल्कि एक बनावटी सवाल को पेश कर रहा था। भय था कि मौक़ा पाते ही जनता का आन्दोलन इस ढोंग को दबाकर वास्तविकता को सामने रख देगा। यदि आन्दोलन से जनता का हित पूरा हो रहा था, वह उसके हृदय से उठा था तो जनता का अविश्वास करने का क्या कारण हो सकता था?

इस आन्दोलन में काग्रेस की गाधीवादी नेताशाही का जनता मे अविश्वास होने का कारण स्पष्ट था। काग्रेस नेताशाही (कांग्रेस हाई कमाण्ड) खूब जानती थी कि जनता की माँग जीवन निर्वाह का अवसर प्राप्त करने की थी। जनता चाहती है, जीवन रक्षा का अधिकार। महात्मा गांधी इस अधिकार से अधिक महत्व युद्ध के विरोध के सिद्धात को दे रहे थे। मानो, प्राण रक्षा न कर सकने पर भी जनता युद्ध का विरोध कर सन्तुष्ट रह सकती थी। शायद समझा गया कि युद्ध विरोध का अधिकार ही जनता को जीवन का अधिकार दिला सकता था। यदि वास्तव मे ही अहिंसा की रक्षा के लिये युद्ध विरोध का अधिकार जनता को जीवन का अधिकार दिलाने के लिये था तो इसे सीधे शब्दो मे जीवन के अधिकार का आन्दोलन या स्वराज्य का आन्दोलन ही क्यो न कहा गया? नाम बदलकर टट्टी की आड मे शिकार खेलकर धोखा किसको दिया जा रहा था? ब्रिटिश सरकार ने इस जाल मे फँसकर युद्ध-विरोध के अधिकार के रूप मे स्वराज्य दे नहीं दिया और भारत की जनता

की दृष्टि में अहिंसा की प्रतिष्ठा के इस आन्दोलन से अधिक महत्व अपनी हिंसा न होने देने के उपाय का है।

इस देश में ऐसे राजनीतिज्ञो की कमी नहीं जो जनता को समझना चाहते थे कि युद्ध विरोध के आन्दोलन का परिणाम स्वराज्य होगा। इसमे भी सन्देह नहीं कि इस आन्दोलन मे जेल जानेवाले ९९'९ प्रप्रिशत सत्याग्रही जेल स्वराज्य की आशा से ही गये। परन्तु महात्मा गाधी ने एक नहीं बीस दफ़े इस बात को स्पष्ट किया कि आन्दोलन केवल युद्ध का विरोध करने के अधिकार के लिये था, स्वराज्य के लिये नहीं। आखिर इस गलतफहमी की जिम्मेवारी है किस पर?

दोष किसका समझा जाय? स्वयं महात्मा गांधी ही अपने एक की ही व्याख्यान में दोनो तरह की बातें कह रहे थे। सितम्बर १९४० में बम्बई में होनेवाली अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी में दिये अपने व्याख्यान में महात्मा गांधी ने स्पष्ट शब्दो में कहा कि यह आन्दोलन केवल युद्ध का विरोध करने का अधिकार माँगता है, जो भाषण की स्वतंत्रता है। इसके अतिरिक्त हमे ब्रिटिश सरकार को किसी परेशानी मे नहीं डालना। स्वराज्य मुसीबत मे है.....। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यह आन्दोलन स्वराज्य के मार्ग पर एक बड़ा क़दम है.. ... । इस बात से जनता क्या समझे? महात्मा गांधी के बात करने के ढंग के कारण उनके भक्त श्रद्धा से कहा करते हैं—महात्माजी की बात को समझ सकना आसान काम नहीं। जो लोग कुछ न समझ सकने से संतुष्ट हो सकते हैं, उनके लिये तो यह बहुत ठीक है परन्तु जो समझना चाहते हैं, उनकी तो मुसीबत है।

समझ का मार्ग महात्मा गांधी को भी अधिक पसन्द नहीं। समझ आर दलील की अपेक्षा वे विश्वास पर ही अधिक भरोसा रखते है। इसीलिये वे काग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन पर अपने सिद्धान्तों के विश्वास का चौखटा चढ़ाने का यत्न करते रहते हैं। अहिंसा और चर्खे

को यदि कोई केवल अनुशासन के ढंग पर स्वीकार करना चाहे तो महात्मा गांधी को उससे तसल्ली नहीं होती। वे उसे विश्वास के रूप मे ही भारतवासियो के दिमाग़ मे ठूंस देना चाहते हैं। यहाँ तक कि 'ईश्वर विश्वास' जैसे नितान्त साम्प्रदायिक विषय को भी सत्याग्रह के राजनैतिक आन्दोलन के लिये आवश्यक शरत ठहरा दिया गया। इन सब बातो पर जिन्हें आपत्ति हो, जो गांधीवाद के सिद्धान्तो को धर्म विश्वास के रूप में स्वीकार करना न चाहें, उनके लिये महात्मा गाधी की सलाह थी कि वे कांग्रेस के राजनैतिक आन्दोलन के अखाड़े से बाहर खड़े होकर गांधीवादी राजनीति की आध्यात्मिक कलाबाज़ी का नतीज देखा करें। उनका कहना था—हमे गुणियो की आवश्यकता है, संख्या की नहीं। महात्मा गांधी और गांधीवाद का यह साम्प्रदायिक अनुशासन गांधीवाद की शुद्धता के लिये सहायक हो सकता था परन्तु भारत के राष्ट्रीय राजनैतिक सगठन पर इसका घातक परिणाम हुआ। अपने उद्देश्य और कार्यक्रम की शक्ति गांधीवाद पर क़ुर्बान होकर रह गई।

आन्दोलन का उद्देश्य

राष्ट्रीय कांग्रेस देश की राजनैतिक संस्था है। भारत की स्वतन्त्रता इसका राजनैतिक उद्देश्य है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये ही काग्रेस को कोई नीति या कार्यक्रम को अपनाना चाहिये। महात्मा गाधी ने काग्रेस के सामने अपनी नीति काग्रेस का राजनैतिक उद्देश्य प्राप्त करने के साधन के रूप मे ही पेश की थी परन्तु शनै-शनैः काग्रेस की शक्ति गांधीवादी नीति का प्रचार करने मे ही ख़र्च होने लगी। गाधीवाद मुख्य और कांग्रेस गौण बन गई। इतना ही नही, कांग्रेस का राजनैतिक उद्देश्य, स्वराज्य भी गांधीवाद के आदर्श और उद्देश्य पर क़ुर्बान हो गया। सन् १९४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह इस बात का प्रमाण है।

इस आन्दोलन का उद्देश्य भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करना

नहीं, बल्कि संसार में गांधीवादी अहिंसा का ढिंढोरा पीटना था। इस व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन ने कांग्रेस को जनता की राजनैतिक उन्नति और मुक्ति का साधन न रहने देकर गाधीवादी सत्य-अहिंसा के प्रयोग का साधन बना दिया है।

कांग्रेस से हमारा अभिप्राय है कांग्रेस की आम जनता से; कांग्रेस की नेताशाही और कांग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली मालिक श्रेणी से नहीं। यह श्रेणी अपने स्वार्थ को पूरा करने के इलावा किसी दूसरे काम का साधन नही बन सकती। कांग्रेस की यह नेताशाही और कांग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली श्रेणी अहिंसा प्रचार के लिये कांग्रेस का बलिदान होना उसी समय स्वीकार कर सकती है, जब इससे उनका अपना स्वार्थ पूरा हो।

इस आन्दोलन का उद्देश्य बताया गया अहिंसा की रक्षा के लिये सिद्धान्त रूप से युद्ध विरोध का अधिकार परन्तु आन्दोलन का आरम्भ सरकार के ख़िलाफ कांग्रेस की जिस शिकायत से हुआ उसमे अहिंसा का चर्चा नहीं शासन के अधिकारो की ही माँग थी। कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी ने दिल्ली और पूना के अधिवेशनो मे केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की माँग की थी। इस माँग के पूरे होने पर युद्ध मे पूरी-पूरी सहायता देने का वायदा था। यह माँग पूरी हो जाने पर आन्दोलन न चलता, माँग पूरी न होने पर ही आन्दोलन चला। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना या शासन के अधिकारो की माँग को अहिंसा नहीं कहा जा सकता। जिस समय तक कांग्रेस नेताशाही को अपनी माँग स्वीकार हो जाने की आशा थी, उन्होने गाधीवादी अहिंसा को ग़ैर-अमली और अव्यवहारिक कह-कर ठुकरा दिया परन्तु माँग के अस्वीकार हो जाने पर गाधीवादी अहिंसा की स्थापना के लिये जनता को आन्दोलन में जोत दिया गया।

राजनैतिक दृष्टि से यह एक मज़ाक है कि ब्रिटिश सरकार ने शासन के अधिकारो की हमारी माँग को ठुकरा दिया, इसलिये हम ससार में

अहिंसा का प्रचार करने का वीड़ा उठा लें। यह ठीक है कि महात्मा गांधी ने युद्ध के आरम्भ से ही स्वराज्य की माँग को ताक पर रख दिया था और केवल अहिंसा प्रचार की बात कर रहे थे परन्तु कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी तो ऐसा नहीं कर रही थी। वह तो स्पष्ट तौर पर शासन के अधिकार माँग रही थी और उसके मूल्य स्वरूप युद्ध यानी हिंसा मे सहायता देने के लिये तैयार थी। कांग्रेस की माँग असफल होने पर आन्दोलन चलना चाहिये था शासन के अधिकार या स्वराज्य की माँग का। जनता के आन्दोलन के लिये तैयार होने पर भी यह आन्दोलन न चला। क्योकि जनता और नेताओ के स्वराज्य के आदर्श मे अन्तर है। लेकिन जनता को वश मे कैसे रखा जाता? इसका उपाय करने के लिये मैदान गाधीवान के हाथ सौंप दिया गया। इस उपाय से ही कांग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली श्रेणी का नेतृत्व बना रह सकता था। जनता बेचारी तो विश्वास की रस्सी मे बँधी गूँगी बकरी है। उसे चाहे जिसे सौंप दिया जा सकता है। कभी स्वराज्य के नाम पर शासन सुधारो का आन्दोलन उससे कराया जा सकता है और कभी वह सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों की आजमाइश के काम आ सकती है।

कोई आन्दोलन व्यक्तिगत उसी अवस्था मे समझा जा सकता है जब आन्दोलन मे भाग लेनेवाले लोग केवल व्यक्तिगत भावना और सिद्धान्त से मनमाने ढंग से व्यवहार करें। परन्तु इस आन्दोलन मे भाग लेने के लिये लगातार प्रचार किया जाता रहा। जनता को विश्वास दिलाया गया कि आन्दोलन शीघ्र ही स्वराज्य की भारी लड़ाई का रूप लेगा। गैर ज़िम्मेवार आदमियों की बात जाने दीजिये, काग्रेस के प्रधान मौलाना आज़ाद ने ही १२ दिसम्बर १६४० की शाम को इलाहाबाद मे एलान किया कि सत्याग्रह शीघ्र ही सार्वजनिक रूप लेगा। ऐसी अवस्था मे जनता उसे अपना आन्दोलन समझकर उसमे भाग लेने से कैसे बच सकती

थी। दूसरी ओर महात्मा गांधी शुरू से ही आन्दोलन के व्यक्तिगत होने की बात कहते रहे। सवाल है, कांग्रेस के आन्दोलन के विषय में अधिकार से प्रामाणिक बात कौन कह सकता है? जनता किसका विश्वास करे? कांग्रेस के प्रधान का या उस व्यक्ति का जो कांग्रेस का चार आना मेम्बर भी नहीं? ... ...लेकिन मज़ा यह है कि प्रधान की ही बात ग़लत निकली?

कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी और नेताओं से यह प्रश्न किया जा सकता है कि जुलाई १९४० के प्रथम सप्ताह में गांधीवादी अहिंसा के जिस आदर्श को उन्होने अव्यवहारिक ठहराया था, अक्तूबर, १९४० में आकर उसी गांधीवादी अहिंसा के प्रयोग और आज़माइश के लिये उन्होंने कांग्रेस को महात्मा गांधी के हाथ कैसे सौंप दिया? रामगढ़ कांग्रेस मे जिन प्रस्तावों को कांग्रेस ने पास किया था, उनका स्पष्ट अर्थ साम्राज्यशाही युद्ध में किसी प्रकार भी सहायता न देना और पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी विधान या सुधार को स्वीकार न करना था। शर्तों पर सरकार को युद्ध मे सहायता देने के दिल्ली और पूना के प्रस्तावो से उसका क्या सम्बन्ध है? अहिंसा की स्थापना के लिये सत्याग्रह चलाने तथा कांग्रेस के उद्देश्य—पूर्ण स्वतंत्रता में क्या सम्बन्ध है।

आन्दोलन महात्मा गांधी के नियंत्रण-डिक्टेटर शिप—में चल रहा था परन्तु आन्दोलन था कांग्रेस का। कांग्रेस के उद्देश्य को पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति से बदलकर अहिंसा का प्रचार निश्चित कर देने का अधिकार किसे था? क्या कांग्रेस ने अपना उद्देश्य बहुमत से बदल लिया था? विपरीत इसके लाहौर सन् १९२९ और बम्बई सन् १९३४ के अधिवेशनों में कांग्रेस अधिक राय से अपने कार्यक्रम में 'वैध और शान्तिमय उपायों' के स्थान में 'सत्य और अहिंसा के उपाय' शब्द जोड़ने से इनकार कर चुकी थी।

अहिंसा मे कांग्रेस के नेताओं का कितना विश्वास है, इस बात का प्रमाण पूना के अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन के एलानो मे हम देख चुके है। पं० जवाहरलाल नेहरू इस सिद्धान्त पर कितना विश्वास करते हैं, यह उनके इस एलान से स्पष्ट है कि यदि वे अंग्रेज़ होते तो अपने देश पर आक्रमण होने की अवस्था मे वही करते जो अंग्रेज़ जर्मनी के आक्रमण के उत्तर मे कर रहे है। मौलाना आज़ाद अहिंसा मे अपने विश्वास की गहराई यह कहकर प्रकट कर चुके है कि भारत पर विदेशी आक्रमण होने पर मैं शत्रु से तलवार लेकर लड़ूँगा। स्वयं महात्मा गांधी का अहिंसा पर पूरा विश्वास है परन्तु वायसराय को यह समझाने का क्या अर्थ था—"यदि मेरा बस चलता तो इस युद्ध में ब्रिटेन को बिना किसी शर्त के भारत से सहायता दिलवाता।" यह सहायता चाहे भारत के जन धन से दी जाती या माला फेरकर और भगवान् से प्रार्थना करके पहुँचाई जाती, हिंसा भरे युद्ध के लिये ही होती।

इससे पहले भी महात्मा गाधी के अहिंसा मे विश्वास के उदाहरण हमे मिल चुके है। पिछले युद्ध मे महात्मा गांधी के रँगरूट भरती कराने की बात का ज़िक्र श्री राजगोपालाचार्य पूना अधिवेशन में कर चुके है। दक्षिण अफ्रीका में बोअर युद्ध के समय और अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारो के विरुद्ध ज़ुलू लोगो के विद्रोह करने पर महात्मा गांधी अहिंसा की रक्षा के लिये स्वयं सेवक दल बनाकर अफ्रीकन-ब्रिटिश-सरकार की हिंसा मे सहायता के लिये तैयार थे। हालांकि स्वयं उनके अपने विचार के अनुसार न्याय बोअर और ज़ुलू लोगो के पक्ष मे ही था परन्तु ब्रिटिश सरकार की सहायता करने से दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो को रियायत मिलने की आशा थी।*

---

* If we desire to win our freedom and achieve our welfare as memders of the British Empire,

यह है गाधीवाद की क्रियात्मक अहिंसा का रूप, जिसकी स्थापना के सामने भारत की राजनैतिक स्वतन्त्रता का भी कुछ महत्व नहीं रहा।

अहिंसा की स्थापना होनी चाहिए, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। योरुप मे होनेवाली हिंसा से हमारा हृदय फट रहा था परन्तु स्वयम् इस देश मे, जनता से जीवन का अवसर और साधन छीनकर जो हिंसा मौजूदा व्यवस्था मे हो रही है, उसकी फिक्र गांधीवाद को न हुई। यदि वास्तव में ही हिंसा का अन्त कर अहिंसा की स्थापना उद्देश्य था या है तो उसके लिये इस देश में ही बहुत कुछ करने को मौजूद है, परन्तु उसके लिये केवल नैतिक विरोध (Moral protest) से काम नहीं चलेगा। देश में अहिंसा स्थापन करने का प्रयत्न जनता के राज का रूप ले लेगा, जो गाधीवाद को मंजूर नहीं। इसलिये देश की राजनैतिक भावना को भँवर मे डाले रहने के सिवा दूसरा उपाय नहीं, यही इस आदोलन का उद्देश्य है। इस आन्दोलन

---

here is a golden opportunity for us to do so by helping the British in the war by all the means at our dispolsal (P 115)

"यदि हम स्वतन्त्रता चाहते हैं और ब्रिटिश साम्राज्य के अग बने रहकर अपनी भलाई चाहते हैं तो हमारे लिये सुनहरा अवसर है कि तन मन धन से इस युद्ध मे ब्रिटेन की सहायता करें।"...... अहिंसा के इस आध्यात्मिक आदर्श को समझ पाना आसान काम नहीं। ऐसा ही सुनहरा अवसर १६१४-१६१८ के युद्ध में आया था। महात्मा गाधी ने उससे देश को जितना लाभ हो सकता था पहुँचाया। सन् १६२६ में वह सुनहरा अवसर फिर आया परन्तु किया क्या जाता, उनका वस नहीं चला। जनता को और बातों में मूर्ख बनाया जा सकता है परन्तु इस सुनहरे अवसर से लाभ उठाने के यत्न मे गाधीवाद की सब काई फट जाती।

ने कांग्रेस की शक्ति को व्यय कर रहा है परन्तु कांग्रेस के उद्देश्य को पूरा नहीं कर रहा।

आन्दोलन का कार्य-क्रम

इस आन्दोलन का कार्य-क्रम भी एक विचित्र वस्तु है। जिस प्रकट या वास्तविक उद्देश्य से आन्दोलन चलाया गया, उसे ध्यान में रखते हुए ४० के आन्दोलन का कार्यक्रम और किसी ढंग का हो ही न सकता था। वास्तव में आन्दोलन का उद्देश्य युद्ध का विरोध भी न था, वह था केवल युद्ध का विरोध करने के अधिकार को मनवा लेना या सरकार को कांग्रेस की शक्ति दिखा देना है। युद्ध का विरोध करना इस कार्यक्रम में शामिल न था क्योंकि कार्यक्रम की पहली शर्त आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार के काम में किसी प्रकार की अड़चन न डालना थी। युद्ध विरोध का अधिकार माँगने के लिये यदि ऐसे कार्यक्रम पर चला जाता जिससे वास्तव मे ही युद्ध का विरोध सफलता से होने लगता तो ब्रिटिश सरकार अड़चन अनुभव किये बिना न रह सकती? इसलिये कार्यक्रम से उन सब कामों को दूर रखा गया जिनका प्रभाव युद्ध के संचालन पर पड़ सकता था। आन्दोलन को टालकर कांग्रेस की इज्जत बचा लेने के लिये जनता से राजनैतिक मार्क टाइम × कराते जाना ही उसे कांग्रेस के नेतृत्व के कब्जे में रखने का उपाय था।

इस सत्याग्रह की सबसे बड़ी खूबी थी, इसका व्यक्तिगत बना दिया जाना। महात्मा गांधी की राय है कि वास्तविक विश्राम और श्रद्धा से सत्याग्रह करनेवाले यदि दो एक व्यक्ति भी सत्याग्रह करें तो उद्देश्य सफल हो सकता है। व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ करने के लिये बयान देते हुए १५ अक्टूबर १९४० को बम्बई में महात्मा गांधी ने कहा था 'सत्याग्रह चाहे एक व्यक्ति करे और चाहे अनेक करें, उसके स्वरूप

× Marktime कवायद में एक ही जगह खड़े रहकर कदम उठाते जाना,

सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व स्वीकार करते समय महात्मा गांधी ने बम्बई में १५ अक्टूबर को एक महत्त्वपूर्ण संकेत किया था। उनके शब्द थे—'हमे युद्ध के बारे मे जितना हम चाहें, कहने का अधिकार होना चाहिए, बशर्ते कि हम अहिंसा पर दृढ़ रहें। सरकार उन्हें गिरफ्तार कर सकती है, जो हिंसा का उपदेश देते है।' सरकार किसे गिरफ्तार करे और किसे गिरफ्तार न करे, इस विषय मे चिन्ता करने की महात्मा गाधी को या काग्रेस को क्या जरूरत ? हिंसा का उपदेश देता कौन है ? इस बात का उत्तर भी महात्मा गाधी ने संकेत से दे दिया है। जो लोग गाधीवादी अहिंसा मे विश्वास प्रकट कर अहिंसा की रक्षा के आन्दोलन में भाग नहीं लेते, बल्कि किसी दूसरे कार्यक्रम से राजनैतिक स्वतंत्रता चाहते हैं, वे निश्चय ही गाधीवाद की दृष्टि में हिंसा का उपदेश देनेवाले हैं। राजनैतिक क्षेत्र में अपने प्रतिद्वन्दियो पर विरोधी शक्ति का प्रकोप गिराने का यह षडयंत्र कहाँ तक सत्य और अहिंसा पूर्ण है, यह न्याय की सांसारिक बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कठिनता से ही समझ पायेगा।

अपने इसी भाषण मे महात्मा गाधी ने यह भी स्पष्ट किया कि '....इस समय स्वराज्य के लिये लडाई का कुछ अर्थ नहीं, हम भाषण-स्वतंत्रता के लिये लड रहे है।' इस वक्तव्य से स्थिति किसी हद तक स्पष्ट हो जाती है परन्तु सचाई का तक़ाज़ा था कि साफ़-साफ़ कहा जाता कि हम बिलकुल ही नहीं लड रहे हैं, केवल जनता को भ्रम में रख रहे हैं कि स्वराज्य की लड़ाई जारी है। आन्दोलन के लिये जिस कार्यक्रम की तजवीज़ की गई वह इसी प्रयोजन के अनुकूल था। युद्ध विरोध की पुकार को सार्वजनिक रूप से कभी नही उठाया गया और न उसे देहातों मे किसानो और मज़दूर लोगो मे आरम्भ किया गया, जहाँ से लोग युद्ध के लिये भरती होते हैं। काम शुरू हुआ इस तरह कि काग्रेस के मंत्रियो तथा ऊँची सामाजिक स्थिति के काग्रेस-मेम्बरो ने

पत्र लिखकर सरकार को सूचना दी कि वे युद्ध विरोध का अपराध करने जा रहे हैं। सूचना देने का प्रयोजन था कि युद्ध विरोध का आन्दोलन जनता में किये जाने से पहले ही सरकार उन्हें गिरफ्तार कर ले। नेताओं का त्याग बना रहे। जनता में आन्दोलन भी न हो और जनता अनुभव करे कि विरोध हो रहा है। युद्ध विरोध का यह तरीक़ा कितना निस्सार था, यह इस बात से समझा जा सकता है कि पंजाब हाईकोर्ट ने इसे युद्ध विरोध का अपराध ही नहीं समझा। दूसरा ढंग था कि कुछ बड़े आदमी दस-पाँच बड़े आदमियों को युद्ध विरोधी पत्र लिख दें और सरकार को इसकी सूचना दे दी जाय। युद्ध विरोधी व्याख्यान देने या नारा लगाने से पहले सभी जगह सरकार को इत्तिला दे देना ज़रूरी था ताकि आन्दोलन सरकार की नज़रों में और समाचार पत्रों में होता रहे और जनता तक उसके पहुँचने से पहले ही सरकार उसे रोक सके।

इस आन्दोलन में जिन लोगों ने भाग लिया उनमें मुख्यत: कांग्रेस के पदाधिकारी थे, जिन्हें कांग्रेस में अपनी स्थिति बनाये रखने की ज़रूरत थी या कांग्रेस के अनुशासन का ख़याल था। आम जनता को इससे दूर रखा गया। गांधीवाद की गहरी नीति को न समझनेवाले कार्यकर्ताओं ने कांग्रेस के आन्दोलन की शान रखने के लिये कई स्थानों पर कुछ लोगों को उत्साहित करके आन्दोलन में आगे भेजा परन्तु यह लोग अहिंसा की बारीकियों की अपेक्षा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की कल्पना ही मन में लिये थे। एक दफ़े अहिंसा के लिये जेल जाकर, आन्दोलन में जनशक्ति का बिलकुल अभाव देखकर और आन्दोलन का उद्देश्य स्वराज्य के बजाय गांधीवादी अहिंसा की जयकार समझकर उन्होंने दुबारा जेल जाने से इनकार कर दिया। कुछ लोगों ने कांग्रेसी क्षेत्र में अपने सम्मान की रक्षा के लिये आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिये नाम तो दे दिया परन्तु आन्दोलन का उत्साहहीन रूप देख कर

वे कतरा गये। इन स्वयम्सेवक वीरों को जबरदस्ती जेल भेजने के लिये कांग्रेस से बार-बार एलान किये और जेल न जाने की अवस्था में उन्हें काग्रेस से अलग हो जाने की धमकी दी गई परन्तु प्रभाव कुछ न हुआ।

क्रान्ति की अधकचरी धारणा रखनेवाले लोगों ने राष्ट्रीयता के जोश में आकर इस गाधीवादी आन्दोलन को आम जनता में फैलाकर राष्ट्रीय रूप देने के लिये इसमें सहयोग दिया परन्तु उन्हें निराश होना पड़ा। कुछ काग्रेसी नेताओ ने भी कांग्रेस की इज़्ज़त बचाने के लिये इस आन्दोलन को सार्वजनिक रूप देने की अदूरदर्शिता * करने का यत्न किया परन्तु महात्मा गांधी जनता की शक्ति को, विशेष कर क्रान्तिकारी विचार-धारा को, दूर रखने के लिये आन्दोलन को संकुचित करते गये। सत्या-ग्रहियो पर ऐसी-ऐसी पाबन्दियाँ लगाई गईं कि सत्याग्रह के किसी भी प्रकार से सार्वजनिक आन्दोलन बन जाने की सम्भावना ही नहीं रही।

इस सत्याग्रह के लिये महात्मा गांधी का दावा था कि यह सत्याग्रह अपना उद्देश्य पूर्ण किये विना समाप्त नहीं होगा। ऐसा ही एलान उन्होने सन् १६३०, २७ फ़रवरी को भी किया था। उस समय कहा गया था—'एक भी सत्याग्रही के जीवित रहते या जेल से बाहर रहते, सत्याग्रह बन्द नही होगा।' इस सत्याग्रह ने १६३३ मे व्यक्तिगत सत्या-ग्रह का रूप ले लिया और ७ अप्रैल १६३४ के एलान से उसे समाप्त कर दिया गया और व्यक्तिगत सत्याग्रह का अधिकार महात्मा गांधी ने केवल अपने ही लिये रख लिया। १६४० का सत्याग्रह तो आरम्भ ही व्यक्तिगत रूप में हुआ। इसलिये इसका अन्त होने में भी देर न लगी। जहाँ तक आन्दोलन का सम्बन्ध जनता के सहयोग था, वह

* महात्मा गान्धी के विचार में इसे अदूरदर्शिता ही कहा जायगा।

शीघ्र समाप्त हो गया क्योंकि युद्ध के काम मे रुकावट डाले बिना और किसी राजनैतिक कारण के बिना चलनेवाले आन्दोलन की आध्यात्मिक नैतिकता को जनता समझ न सकी। अपने जीवन की कठिनाइयों को दूर करने के प्रश्न और युद्ध विरोधी की आध्यात्मिक-नैतिकता मे कोई सम्बन्ध उसे दिखाई न दिया। सार्वजनिक हित की दृष्टि से यह आन्दोलन केवल निरर्थक कष्ट सहन का उपाय था। उद्देश्य इसका कुछ था नहीं जिससे इसकी सफलता या असफलता जाँची जा सकती।

जनता के लाभ के विचार को एक ओर छोडकर यदि आन्दोलन की सफलता की दृष्टि से ही उसका उद्देश्य देखा जाय तो वह था हिंसा न होने देने के लिये युद्ध का विरोध करना। इस उद्देश्य मे आन्दोलन की सफलता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार को युद्ध के लिये भारत से जितने रँगरूटों और धन की आवश्यकता थी, बिना किसी अडचन के उससे अधिक वे पाते रहे है। ×

युद्ध विरोध के गाधीवादी आन्दोलन मे कितनी गम्भीरता और ईमानदारी थी, जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, इसका अन्दाज़ा स्वयम् कांग्रेस के प्रमुख सदस्यो के कार्य से लगाया जा सकता है। काग्रेस के कुछ पूँजीपति सदस्य जनता मे सम्मान बनाये रखने के लिये युद्ध विरोधी नारे लगाकर या युद्ध विरोधी भाषण देकर स्वयम् जेल चले गये परन्तु उनकी मिलें सरकार को युद्ध के लिये सामान

× इस बात के प्रमाण के लिये भारत मन्त्री श्री एमरी के पार्लियामेण्ट मे दिये गये बयानों और भारत सरकार द्वारा युद्ध के लिये भरती किये रँगरूटो और प्राप्त चन्दो से किया जा सकता है। युद्ध के लिये रुपया समेटने के लिये सरकार ने जो कागज़ी रुपया या हुण्डी चलाई है, उसकी सफलता इस बात का प्रमाण था कि युद्ध के विरोध का कोई प्रयत्न देश में न हो रहा था।

सप्लाई करके लाखों रुपया बटोरती जा रही थीं। यहाँ तक कि स्वयम् गांधी-आश्रमो को भी युद्ध का सामान मुहय्या कर आर्थिक लाभ उठाने की इजाज़त महात्मा गांधी ने दे दी। युद्ध विरोध का उद्देश्य राजनैतिक न था। युद्ध के विरोध का यह आन्दोलन केवल पीडित और असतुष्ट जनता की आँख में धूल डालकर उन्हें यह समझा देना था कि तुम्हारी मुक्ति का आन्दोलन चल रहा है, तुम सन्तोष से उसके परिणाम की प्रतीक्षा करो ! अपने संकटो को दूर करने के लिये उतावले होकर कोई सार्वजनिक हलचल पैदा न करो वर्ना राष्ट्रहित का जादू—जिसे गांधीवाद कर रहा है—बिगड़ जायगा।

गाधीवाद का यह दावा है—त्याग और तपस्या में बड़ी शक्ति है, त्याग और तपस्या कभी निरफल हो ही नहीं सकते। यह विचार आध्यात्मिक दृष्टि से सही हो सकता है, परन्तु सांसारिक अनुभव और क्रियात्मक दृष्टि से यह बात ठीक नहीं जँचती। एक व्यक्ति अपने हृदय के सतोष और विश्वास को पूरा करने के लिये, अपने विचार से सत्य और अहिंसा की शक्ति की परीक्षा करने के लिये अपनी शक्ति का चाहे जिस प्रकार उपयोग कर सकता है। यह व्यक्तिगत-स्वतंत्रता का मामला है परन्तु राष्ट्रीय और सामाजिक शक्ति को व्यक्तिगत विचारों या महत्वाकाक्षा पर बलिदान कर देना नीरो, सीज़र और नादिरशाह की निरंकुश तानाशाही से कम नहीं।

त्याग, तपस्या और बलिदान यदि उद्देश्य के अनुकूल ठीक मार्ग पर किया जाय तो वह उद्देश्य को प्राप्त करने मे सहायक हो सकता है। यदि बिना किसी उद्देश्य के और गलत साधनों को लेकर अस्वाभाविक मार्ग पर त्याग, तपस्या और बलिदान किया जायगा तो वह आत्महत्या के अतिरिक्त और कुछ न होगा। राष्ट्रीय रूप से ऐसा करना राष्ट्रीय आत्महत्या है। राष्ट्र का हित व्यक्तिगत प्रयत्न या कुर्बानी से पूरा नहीं हो सकता। जब तक अपने त्याग और बलिदान का मूल्य

लेने की शक्ति जनता और देश में न हो, व्यक्ति का त्याग और बलिदान केवल राजनैतिक अपराध ही समझा जायगा। जैसे कि भारत के सैकड़ों क्रान्तिकारियो का प्राणदान समझा गया।

इस देश की स्वतंत्रता के लिये त्याग और बलिदान पहले पहल गांधीवाद ने ही नहीं सिखाया। तीन या छः मास की जेल और खद्दर के मोटे कपड़े पहनने से बहुत बड़ा त्याग व्यक्तिगत रूप से इस देश की स्वतन्त्रता के लिये किया जा चुका है। गांधीवाद और कांग्रेस ने इस देश के क्रान्तिकारियो के काम की निन्दा जी खोलकर की हे परन्तु इस बात से वे इनकार नहीं कर सकते कि सैकडो क्रान्ति-कारियों ने देश के लिये बिना हिचके फाँसी के तख़्ते पर प्राण दे दिये और आजन्म जेल की सज़ायें भुगती। इन आतंकवादी क्रान्तिकारियो के बलिदान यदि देश की जनता को स्वराज्य नहीं दिला सके तो व्यक्तिगत रूप से छ. मास जेल काट लेना भी ऐसा नही कर सकेगा। जीवन तक का बलिदान करके आतंकवादी क्रान्तिकारी इस देश की जनता को स्वराज्य नहीं दिला सके, इसका कारण यही था कि वे जनता की शक्ति से दूर थे, वे जनता का सहयोग प्राप्त नहीं कर सके। उनके बलिदान का वह मूल्य न मिला, जो मिलना चाहिये था। सत्याग्रह आन्दोलन मे व्यक्तिगत रूप से हज़ार हिस्सा कम त्याग करके जनता इसलिए सबल हो सकी कि समूह की शक्ति उसके साथ थी। इस देश के राजनैतिक नेताओ ने क्रान्तिकारियों के उत्साह और बलिदान को ग़लत रास्ते पर भटका हुआ बताया। भारत के आतंकवादी क्रान्तिकारियो ने अपनी भूल पहचानकर वैयक्तिक बलिदान का मार्ग छोड जनता की शक्ति का मार्ग अपना लिया लेकिन गांधीवादी कांग्रेस समूह की शक्ति को छोड़ कर व्यक्तिगत बलिदान की ओर लौट रही थी।

सोई हुई जनता को जगाने के लिये व्यक्ति का बलिदान उपयोगी हो सकता हे परन्तु देश की जनता के जाग चुकने के बाद उसे व्यक्तिगत

त्याग द्वारा ख़ामुखाह ठेलते जाने से क्या लाभ ? ऐसे समय व्यक्ति की शक्ति को जनता से छीनकर बलिदान कर देने का अर्थ है व्यक्ति को खोकर जनता को निर्बल बना देना। सन् १६४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह का परिणाम यही हुआ। आन्दोलन के परिणामस्वरूप जनता राजनैतिक दृष्टि से एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकी और न आन्दोलन की कुर्बानी के फल मे वह पहले से अधिक सगठित और उत्साहित ही हो पाई। इस आन्दोलन से केवल जनता की सामूहिक शक्ति और राजनैतिक उत्साह का नाश ही हुआ।

कांग्रेस को मिट जाने से बचाने के लिये यह आन्दोलन चलाया गया। महात्मा गाधी के एलान के अनुसार यदि कांग्रेस इस समय चुप रह जाती तो उसका अस्तित्व मिट जाता। कांग्रेस को मिटने से बचाने के लिये किया क्या गया ? गांधीवाद की कसौटी पर कस कर क्रान्तिकारो विचारो और उत्साही कार्यक्रम मे विश्वास रखनेवालो का अहिंसात्मक बहिष्कार (Non violent purge)

वास्तविक परिस्थिति को देखकर हमें यह मानना पड़ता है कि १६४१ तक बिना किसी राजनैतिक उद्देश्य के आन्दोलन द्वारा जनता की शक्ति को बहाकर गाधीवाद ने कांग्रेस को बलवान नहीं निर्बल ही बनाया। अपनी असह्य अवस्था को प्रकट करने और उसे दूर करने की जो शक्ति जनता में संचय हो रही थी उसे इस निरफल आन्दोलन की बसांती नहर से बहा दिया गया, क्योंकि भय था कि जनता के असंतोष का बढ़ता हुआ प्रवाह काग्रेस पर कब्ज़ा रखनेवाली श्रेणी की स्थिति और अधिकारो के बाँध को टक्कर मारकर गिरा न दे। इस श्रेणी की स्थिति को रक्षा के लिये, जनता को इन लोगों के कब्ज़े में बनाये रखने के लिये, जनता के असंतोष और जागृति को नष्ट कर देना ही गाधीवाद की दृष्टि में कांग्रेस की रक्षा थी।

राजनैतिक आन्दोलन की सफलता का मार्ग यह है कि जनता

का सचेत अंग आम जनता को साथ लेकर मोर्चे की ओर बढ़े। इस आन्दोलन ने ऐसा नहीं किया गया। आन्दोलन मे सहयोग देने के लिये केवल सचेत अंग को पुकारा गया इस शर्त पर कि वह जनता को साथ न लायें। जनता को साथ लाने के लिये सचेत अंग के पास कोई ठोस पुकार भी न थी। परिणाम यह हुआ कि जनता का राजनैतिक दृष्टि से यह सचेत अंग जो देश की अबोध और अशिक्षित जनता के लिये ज्ञानेन्द्रियों के समान है, जेलो मे बन्द होकर जनता से अलग हो गया और जनता चैतन्य के अभाव मे मुसीबत को अनुभव करती हुई भी असमर्थ और निश्चल हो गई।

सन् १९४० के आन्दोलन की सफलता का अनुमान आन्दोलन के दौरान में राजनैतिक कारणो से जेल जानेवाले व्यक्तियो की सख्या से लगाना भी भूल होगी। युद्ध के विरोध मे राजनैतिक उद्देश्य के बिना, शुद्ध गांधीवादी सत्याग्रह करके जेल जानेवालो की संख्या राजनैतिक क़ैदियों मे एक चौथाई से अधिक न होगी। जिन राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने गांधीवादी सत्याग्रह नहीं किया, जिन्हे ब्रिटिश सरकार ने युद्ध की अवस्था में राजनीतिक अशान्ति पैदा न होने देने के लिये जेलो मे सुरक्षित रख दिया है, उन्हें सत्याग्रही नहीं कहा जा सकता। उनके प्रति तो महात्मा गांधी ने १५ सितम्बर १९४० के अपने एलान के अनुसार अपनी उदासीनता प्रकट कर दी थी।

आन्दोलन आरम्भ करते समय महात्मा गांधी ने बम्बई के अखिल भारतीय अधिवेशन मे कहा था—'मैं नहीं जानता मेरे दिमाग मे जो लक्ष्य है उस तक मैं आपको पहुँचा सकूँगा या नहीं। मुझे अभी तक प्रकाश नहीं मिला।' ऐसी अवस्था में जब आन्दोलन का उद्देश्य और मार्ग स्वय महात्मा गाधी के सामने अस्पष्ट था, जनता को उस पर खींच ले जाना जनता की शक्ति और कुर्बानी को खिलवाड़ की चीज़ समझने के इलावा और क्या समझा जायगा। यदि नेता के

सामने कोई लक्ष्य और मार्ग स्पष्ट नहीं, तो राजनैतिक ईमान्दारी यही है कि जनता को अपने भाग्य पर छोड़ दिया जाय।

यह हम स्वीकार करते हैं कि कांग्रेस की नेताशाही महात्मा गांधी पर आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिये लगातार दबाव डाल रही थी। परन्तु किस प्रकार का आन्दोलन कांग्रेस की नेताशाही चाहती थी ? ईमान्दारी और विश्वास के नाते वे लोग गांधीवादी अव्यवहारिक अहिंसा में विश्वास नहीं रखते थे यह बात उन्होंने कांग्रेस कार्य-कारिणी के पूना अधिवेशन में स्पष्ट करदी थी। स्वराज्य के लिये यदि वे आन्दोलन चाहते थे, तो उसके लिये महात्मा गांधी उपयुक्त नेता नहीं हो सकते थे क्योंकि मौजूदा परिस्थितियों में स्वराज्य के लिये लड़ाई लड़ना महात्मा गांधी की दृष्टि में उचित न था।

इस मतभेद के होते हुए गांधीवाद में और कांग्रेस की नेताशाही में मेल हुआ तो किस बात पर ? कांग्रेस की नेताशाही के सामने प्रश्न था, ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालकर उसे अपनी शर्तें मानने के लिये मजबूर करना। इस काम के लिये कांग्रेस-नेताशाही जनता पर विश्वास नहीं कर सकती थी। कांग्रेस के मंत्री मण्डल बनाकर सरकार चलाने के समय उन्होंने जनता की भावना को समझा। मौजूदा विधान की दृष्टि से व्यवस्था की रक्षा करने के लिये उन्हें साधनहीन जनता—मज़दूरों, किसानों और निम्न श्रेणी के नौकरी पेशा लोगों के असंतोष को दबाने की चेष्टा करनी पड़ी। त्रिपुरी और रामगढ़ के अधिवेशनों में भी जनता द्वारा अपनी नीति का विरोध वे देख चुके थे। ऐसे समय जनता को अधिकार प्राप्त करने के आन्दोलन के मार्ग पर चलाने से वह मुँहजोर होकर नेताशाही से अपनी लगाम छुड़ा लेती। ऐसे आन्दोलन से भयंकर परिवर्तन हो जाने का भय था जिसमें शायद मौजूदा व्यवस्था क़ायम न रह पाती। आन्दोलन को

बिलकुल ही न चलाने पर जनता का असंतोष और शक्ति जाने किस राह फूट निकलती ?

गांधीवाद के सामने भी अपना उद्देश्य है, वह है सत्य-अहिंसा की रक्षा। गांधीवाद जनता में असत्य और हिंसा की बढ़ती हुई भावना को दूर करना चाहता है। यह असत्य और हिंसा है, समाज मे पैदा हो जानेवाला संघर्ष को रोकना, इस संघर्ष की राह से आती हुई नयी व्यवस्था का मार्ग बन्द करना ही गांधीवाद का उद्देश्य है। देश का राजनैतिक उद्देश्य आर 'प्रकाश' महात्मा गाधी के सामने स्पष्ट न होते हुए भी एक बात गांधीवाद के सामने स्पष्ट थी कि जनता को हिंसा या व्यवस्था के परिवर्तन के प्रयत्न से रोकना है।

कांग्रेस-नेताशाही और गांधीवाद के राजनैतिक आदर्शों मे भेद होते हुए भी जनता को परिवर्तन और विकास पर आगे बढ़ने से रोकने में दोनो एक राय थे। इसलिये जनता की शक्ति को शिथिल करने का आन्दोलन जनता के सेवक और मित्र महात्मा गाधी के नेतृत्व मे गाधी-वाद की अहिंसा के रूप मे आरम्भ हो गया। गांधीवाद का सत्य, अहिंसा, त्याग का उपदेश और पूँजीवादी तथा ज़मींदारी व्यवस्था की स्वार्थी भावना परस्पर विरोधी है परन्तु उन्नति का मार्ग रोककर मौजूदा व्यवस्था को क़ायम रखने मे गाधीवाद सम्पत्ति की मालिक श्रेणियो का सहायक है। गांधीवाद का उपदेश मालिक श्रेणी के लिये नहीं जनता के लिये है। मालिक श्रेणी गांधीवाद की उन्नति और विकास-विरोधी नीति को श्रद्धा का स्थान दे उससे जनता को दबा देना चाहती है। जनता के हित की दृष्टि से गांधीवाद समाज के शरीर मे निष्प्राण हो गये भाग के समान है, जो उसके स्वास्थ्य और विकास के लिये बाधक है।

समझौते का द्वार खुला रहा—

"Door for compromise remains open"
Mahatma Gandhi

कांग्रेस की नेताशाही जनता की बागडोर मुट्ठी में रखने के लिये सदा राजनैतिक क्रान्ति की बात करती है परन्तु उसकी नीति है, जनता के दबाव द्वारा सरकार को अपने हित की शर्तों पर समझौते के लिये मजबूर करना। मौजूदा व्यवस्था को पलट देना वह नहीं चाहती। गांधीवाद की भाषा में इसे वह हिंसा कहती है। इस व्यवस्था की रक्षा करते हुए सरकार से अधिकार मांगना उनका कार्यक्रम है। ऐसी व्यवस्था लाने के लिये वह कभी तैयार नहीं जिसमें उनकी मौजूदा स्थिति और अधिकार जाते रहें। नयी व्यवस्था की भावना को वह जनता में अनुभव करती है, इसलिये स्वराज्य की लड़ाई या राजनैतिक संघर्ष को वह अपने कब्ज़े में रखते हुए शनैः-शनैः आगे बढ़ाना चाहती है। जनता की शक्ति से अधिक विश्वास उसे गांधीवाद की हृदय परिवर्तन की नीति पर है। हृदय परिवर्तन की नीति का अर्थ है कि अँग्रेज़ सरकार * इस देश की सम्पत्ति की मालिक श्रेणियों के हितों और अपने हितों में समानता समझकर इस देश की सम्पत्ति की मालिक श्रेणियों का शासन क़ायम होने में सहयोग दे। ×

ब्रिटिश साम्राज्यशाही इस देश की मालिक श्रेणी के हाथ से सब अधिकार छीन कर अकेले यहाँ शासन नहीं कर सकती। इस देश की सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के लिये भी ब्रिटिश साम्राज्यशाही के नियंत्रण को सहसा तोड़कर अपना एक छत्र अधिकार क़ायम कर लेना सम्भव नहीं। इन दोनों ही अवस्थाओं से व्यवस्था को पलट देनेवाली क्रान्ति

---

* अँग्रेज सरकार या ब्रिटिश साम्राज्य की नीति को चलानेवाली श्रेणी।

× १६४६ में पैथिक लारेंस के नेतृत्व में ब्रिटिश मन्त्री मण्डल का प्रतिनिधि दल जो प्रस्ताव लेकर भारत आया और कांग्रेस नेताओं ने सहयोग की जो भावना दिखाई वह इस बात का प्रमाण है। इसके लिये लेखक की पुस्तक 'सकटा' में देखिये।

का भय है। देश की आम जनता का शोषण करने के अधिकार को यह दोनो ही शक्तियाँ अपने हाथ में रखना चाहती हैं, इसलिये इन दोनो में होड़ और मुक़ाबिला है। इस मुक़ाबिले के बावजूद वे एक दूसरे की सहायता से ही अपना अस्तित्व क़ायम रखे हुये है। अकेले दोनो मे से कोई भी इस व्यवस्था को क़ायम रखने मे सफल नही हो सकता। इनमें से एक हिस्सेदार के मिटने का अर्थ होगा, इस व्यवस्था का अन्त और नयी व्यवस्था का आ जाना। इस नयी व्यवस्था में इस देश की जनता पैदावार के साधनो को अपने हाथ में कर आत्म-निर्णय का अधिकार अपने हाथ मे रखेगी। आत्मरक्षा और स्वार्थ के विचार से ब्रिटिश साम्राज्यशाही और इस देश की शोषक श्रेणी एक दूसरे के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये मजबूर हे। यह दोनो शक्तियाँ अपने स्वार्थों को जिस प्रकार सटा सकें, वही वैधानिक आन्दोलन और समझौते का मार्ग है। जिसका दरवाजा गांधीवाद सदा खुला रखता हे।

गांधीवाद समझौते का मार्ग खुला रखकर हृदय परिवर्तन द्वारा समस्या का हल करना चाहता है क्योंकि पुरानी व्यवस्था की रक्षा के लिये नयी व्यवस्था का मार्ग इसी तरह बन्द किया जा सकता हे। समझौते और हृदय परिवर्तन की इस नीति में उस जनता के लिये स्थान नहीं है, जिसका जीवन मौजूदा व्यवस्था मे असम्भव हो रहा है? समाज की रक्षा और विकास के लिये यदि परिवर्तन द्वारा मार्ग खोलने की ज़रूरत हे तो उसके लिये भी समझौते और हृदय परिवर्तन की नीति में गुंजाइश नहीं। जनता के आत्म निर्णय का अधिकार या स्वराज्य गाधीवाद की इस नीति से कभी प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि वह उसके आदर्श और उद्देश्य के विरुद्ध है। पुराने समय की नैतिकता और व्यवस्था का ढाँचा लिये हुये गाधीवाद की लाश मनुष्यता के मार्ग मे केवल अड़चन ही बन रही है। मनुष्यता के विकास के विरोधी और समय के प्रतिकूल यह निर्जीव सिद्धान्त अपनी मगन्ध से समाज

के मस्तिष्क में भ्रम पैदा कर उसे वास्तविक सत्य और अहिंस
पहचानने से रोके हुये है।

कोई भी राष्ट्र या देश इस युग में अन्य देशो के प्रभाव से अ
नहीं रह सकता। भारतवर्ष के लिये भी ऐसा करना सम्भव नह
ससार इस समय परिवर्तन के द्वार पर खड़ा है और व्यवस्था की
मज़िल पर क़दम रखना चाहता है। शोषण की मौजूदा व्यवस्था
शासन का अधिकार रखनेवाली श्रेणी इस परिवर्तन को रोकने का य
कर रही है। इस श्रेणी के इलावा शेष मनुष्य समाज नयी व्यवस्थ
लाने का प्रयत्न कर रहा है। नयी व्यवस्था को रोककर शासक औ
मालिक श्रेणी के अधिकारो की रक्षा करने का प्रयत्न नाज़ीवाद औ
फैसिस्टवाद के रूप मे प्रकट हुआ। भारतवर्ष में यह प्रयत्न अहिंसा का
चोला पहनकर गाधीवाद के रूप मे चल रहा है। गाधीवाद समाज
की जिस व्यवस्था और पद्धति मे पैदा हुआ, उसी की रक्षा का प्रयत्न
वह कर रहा है। इस व्यवस्था के कारण जिस श्रेणी का पीडन और
शोषण हो रहा है, जो श्रेणी इस व्यवस्था को बदलना चाहती है,
उसका गांधीवाद से सहयोग नहीं हो सकता।

गांधीवाद का कार्यक्रम भारत के राजनैतिक विकास के लिये नहीं
बल्कि विपरीत परिस्थितियो मे स्वयम् अपनी रक्षा का प्रयत्न है। इसके
लिये वह भारत के स्वाभाविक विकास का बलिदान कर रहा है। इति-
हास इस बात का गवाह है समाज की परिस्थितियाँ बदल जाने पर
नैतिकता भी बदल जाती है। नयी आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियो
मे पुरानी नैतिकता को नया भावुक रूप देने वाले गाधीवाद के लिये
स्थान नहीं। अपनी आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता के लिये भारत
का 'गांधीवाद' से मुक्ति पाना आवश्यक है।

× × ×

की राजनीति का मार्ग क्रान्ति का नहीं ब्रिटिश सरकार से भाव तोल कर सहयोग द्वारा इस देश की व्यवस्था अपने आधीन कर लेना है। १९४० के बाद की राजनैतिक घटनायें इस बात का प्रमाण हैं। व्यक्तिगत सत्याग्रह किस सफलता से समाप्त हुआ, और इंगलैण्ड से स्टाफोर्ड क्रिप्स के आते ही कांग्रेस का समझौते के लिये उत्सुक हो जाना प्रकट करता है कि नेताशाही संघर्ष में विश्वास न करती थी। १९४२ में जन आन्दोलन को रोके रहने वाली कांग्रेसी नेताशाही के जनता से दूर होते ही जन आन्दोलन ने जो रूप लिया वह सिद्ध करता है कि जनता का विश्वास गांधीवादी नीति में न था।

१९४२ के जन आन्दोलन ने जो भी रूप लिया हो उसकी समाप्ति पर परिणाम में फिर लार्ड वावेल की समझौता कॉनफ्रेंस हुई। संसार के सम्मुख ब्रिटिश सरकार ने सिद्ध किया कि भारतवासी संयुक्त होकर उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये तैयार नहीं। जिन अंग्रेज़ों को 'क्विट-इंडिया' कह कर हम भारत से निकाल रहे थे, हमें स्वराज्य देने का प्रस्ताव लेकर उनका ही कैबिनेट मिशन आया। कैबिनेट मिशन के सम्मुख स्वतंत्रता चाहनेवाले भारत की कोई संयुक्त मांग न हो सकी। भारत के स्वराज्य के लिये देश की राजनैतिक शक्तियों का संयुक्त मोर्चा बनाने का उत्तरदायित्व आज इंगलैण्ड के प्रतिनिधियों के कंधे पर है। भारतीय मुस्लिमलीग के लिये कांग्रेस और कांग्रेस के लिये लीग बेगानी और अंग्रेज़ अपने हो रहे हैं। अहिंसा और प्रेम का सिद्धान्त लेकर चलने वाली कांग्रेस की राजनैतिक असफलता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा? इस सब घटना क्रम का विश्लेषण नई पुस्तक 'संकटा' में करने का यत्न कर रहा हूँ। १९४२ के आन्दोलन के कारणों और आन्दोलन में नेताशाही का स्थान और उसके पश्चात् कांग्रेस की नीति तथा भारत की नयी उग्रराजनैतिक समस्याओं का विश्लेषण इस देश की राजनैतिक प्रगति को जानने के लिये अत्यन्त आवश्यक है।
